ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 03 जनवरी 2016

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 03 जनवरी 2016 से 09 जनवरी 2016

पौ.कृ. –09● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 53, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी पश्चिमी पटेल नगर में हुआ ग्यारह कुण्डीय हवन

डी.ए.वी. स्कूल पश्चिमी पटेल नगर नई दिल्ली में विद्यालय के प्रांगण में ग्यारह कुण्डीय हवन समारोह का आयोजन प्रधानाचार्या रश्मि गुप्ता की अध्यक्षता में बड़े हर्ष–उल्लास श्रद्धा एवं धर्मानुसार किया गया। विद्यालय को ईश्वरस्तुति मंत्रों, वैदिक मंत्रों तथा आर्य महापुरुषों की झांकियों से सजाया गया था विद्यालय के सभी बच्चों के अभिभावक आमंत्रित थे प्रत्येक यज्ञ–कुण्ड पर बच्चों के माता–पिता ही यजमान बने तथा अन्य अभिभावकों ने सामूहिक रुप से यज्ञ में वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ एवं वैदिक

धर्म से ओत–प्रोत हो गया था। श्री जे.पी.शूर, अध्यक्ष श्री रविन्द्र कुमार जी, प्रबन्धक, श्री जी. आर साहनी जी तथा दिल्ली के अन्य डी.ए.वी. विद्यालयों की अनेक प्रधानाचार्यो ने यज्ञ में उपस्थित होकर बच्चों का उत्साहवर्धन किया। डॉ महेश वेदालंकार जी के प्रवचनों ने सबको मंत्र मुग्ध कर दिया। यज्ञ ही जीवन है इस तथ्य को पूरे विस्तार से समझाया गया तथा वैदिक और नैतिक शिक्षा का महत्व बताया गया। अंत में ऋषि लंगर की व्यवस्था थी लगभग एक हज़ार से अधिक लोगों ने ऋषि लंगर का प्रसाद खाया तथा इस समारोह की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

प्रधानजी पहुंचे दयानन्द मठ, चम्बा

पिछले दिनों हिमाचल प्रदेश के चम्बा नगर में मान्य प्रधान श्री पूनम सूरी जी ने दयानन्द मठ का दौरा किया जहाँ स्वामी सुमेधानंदजी वर्षों तक तपश्चर्या करते रहे। स्वामी जी ने इस मठ के माध्यम से इस प्रदेश में महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों का प्रचार–प्रसार करने के साथ–साथ 'शारदीय गायत्री महायज्ञ' जैसे अनेकों यज्ञ किए और स्वास्थ्य को लेकर एक 'आयुर्वेदिक औषधालय' की स्थापना की जिसके माध्यम से अनेकों रोगियों का इलाज भी किया गया।

मान्य प्रधानजी ने दिवंगत स्वामीजी के प्रति अपने श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए इस मठ के कार्यकलाप की जानकारी ली और विभिन्न विभागों का दौरा किया। उन्होंने स्वामीजी के साथ अपने संबंधों की चर्चा करते हुए मठ के साथ संपर्क बनाए रखने का संकल्प लिया।

महाराजा हरिसिंह एग्रीकल्चरल कॉलिजिएट स्कूल नागबनी जम्मू में भव्य यज्ञशाला का निर्माण

महाराजा हरिसिंह एग्रीकल्चरल कॉलिजिएट स्कूल नागबनी जम्मू ने दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज प्रबन्धकत्री समिति नई दिल्ली के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपने सराहनीय कदम को आगे बढ़ाते हुए विद्यालय में एक और नवीन व भव्य यज्ञशाला का निर्माण किया है। महान् व्यक्तित्व के धनी व आर्य समाजी महात्मा आनन्द स्वामी जी ने जो नैतिक मूल्य व आदर्श समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दिए उन्हीं आदर्शों को आगे बढ़ाने एवं भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार करने तथा पर्यावरण को, हवन यज्ञों द्वारा विशुद्ध करने के लिए ही नवनिर्मित यज्ञशाला को 'महात्मा आनन्द स्वामी यज्ञशाला' के नाम से अभिहित किया गया।

नवनिर्मित यज्ञशाला का उद्घाटन डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकत्री समिति नई दिल्ली के महासचिव श्री आर.एस.शर्मा जी ने अपने कर–कमलों द्वारा गुरुवार को किया। उद्घाटन के इस अवसर पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन दर्शन से सम्बन्धित एक प्रदर्शनी भी लगाई गई थी, जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन इतिहास को चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया था। मुख्यातिथि श्री आर.एस.शर्मा, निदेशक पब्लिक स्कूलस श्री जे.पी. शूर, स्थानीय प्रबन्धन समिति के अध्यक्ष श्री महेश चोपड़ा जी, तथा केबिनेट मन्त्री श्री बाली भगत तथा श्री दानिश राणा आई.जी पुलिस रेंज ने गेस्ट ऑफ हानर के पद को अलंकृत कर कार्यक्रम की शोभा को बढ़ाया और प्रदर्शनी की भूरि–भूरि प्रशंसा की। समारोह के अन्त में विद्यालय के प्राचार्य श्री आलोक बेताब जी ने उपस्थित अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापन करते हुए कहा कि जम्मू–कश्मीर में मात्र यही ऐसा विद्यालय है जिसमें छात्र–छात्राएँ से प्रतिदिन देवयज्ञ अग्निहोत्र द्वारा करते हैं।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **पूनम सूरी**

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 03 जनवरी, 2016 से 09 जनवरी, 2016

अविवेकी जन डूब जाते हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

भि वेना अनूषत, इयक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः।।

ऋग् ९.६४.२१

ऋषिः **काश्यपः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **गायत्री**।

● **(वेनाः)** प्रभु–प्रेमी मेधावी जन, **(अभि अनूषत)** अभिमुख होकर **(पवमान सोम प्रभु की)** स्तुति करते हैं। **(प्रचेतसः)** प्रकृष्ट चित्तवाले विवेकी जन, **(इयक्षन्ति)** यज्ञ करने का संकल्प करते हैं। **(अविचेतसः)** अविवेकी जन, **(मज्जन्ति)** डूब जाते हैं।

● सोम प्रभु पवमान हैं, जग को पवित्र करने वाले हैं। जो मलिनता संसार में कई कारणों से उत्पन्न होती है उसे विविध साधनों से पवित्र करनेवाले सोम प्रभु यदि न होते तो मलिनता इतनी बढ़ जाती कि प्राणियों का जीवित रहना कठिन हो जाता। वे मानव के हृदय को भी पवित्र करनेवाले हैं, परन्तु उन्हीं के हृदय को पवित्र कर सकते हैं जो अपना हृदय पवित्र होने के लिए उन्हें देते हैं। प्रभु–प्रेमी मेधावी जन सोम प्रभु के अभिमुख हो उनके प्रति प्रणत होते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनकी पावनता का गुणगान करते हैं, उन्हें आत्म–समर्पण करते हैं। परिणामतः वे 'प्रचेताः' बन जाते हैं, उनका चित्त प्रकृष्ट, पवित्र, ज्ञानमय और विवेकयुक्त हो जाता है। 'प्रचेताः' मनुष्य दीर्घद्रष्टा होते हैं। जिस यज्ञ को अन्य लोग निरर्थक समझते हैं, उन्हें वही प्यारा होता है। वह अपने जीवन में यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं। वे सोम–यज्ञ करते हैं, सोम प्रभु के नाम से यज्ञ में आहुतियाँ डालते हैं, 'सोम' प्रभु का भजन–कीर्तन करते हैं और उससे प्रेरणा पाकर स्वयं भी साक्षात् 'सोम' बन जाते हैं। उनके जीवन में सोम–सदृश रसमयता, मधुरता और पावनता आ जाती है। 'सोम' के आदर्श को अपने सम्मुख रखते हुए वे अन्य यज्ञों का भी आयोजन करते हैं। 'सोम' प्रभु पावनता के यज्ञ को चला रहे हैं, वे भी समाज को पावन करते हैं। 'सोम' प्रभु सृष्टि–यज्ञ चला रहे हैं, वे भी सर्जनात्मक कार्यों को करते हैं। 'सोम' प्रभु पालन–पोषण और पूर्ति का यज्ञ कर रहे हैं, वे भी निर्बलों का पालन करते हैं, अपुष्टों को पुष्टि देते हैं, अपूर्णों के दोषों को दूर कर उनके छिद्र भरते हैं। यज्ञमयी नौका पर चढ़कर वे भव–सागर से पार हो जाते है। परन्तु जो 'अविचेताः' हैं, अविवेकी हैं, अल्पदर्शी हैं, वे न 'सोम' प्रभु का स्तवन करते हैं, न यज्ञ करते हैं। परिणामतः वे भव–सागर में डूब जाते हैं और दुर्गति पाते हैं।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी ने कहा विश्वप्रेम और विश्वरूप का प्रेम कोरे ज्ञान से तो उत्पन्न नहीं होता। कोरी श्रद्धा से भी उत्पन्न नहीं होता। ज्ञान के साथ साथ भक्ति का, श्रद्धा का होना आवश्यक है। ज्ञान, श्रद्धा, विश्वप्रेम और विश्वरूप का प्रेम सब–के–सब मिल जायें, तब भावना को विश्वरूप समझ कर अपने आप को दूसरों की सेवा में लगा दो, निष्काम! भगवान से फल की चिन्ता के बिना। इच्छा किये बिना सेवा धर्म को अपनाओ।

भगवान के दर्शन की तीन विधियाँ हैं। पहली विधि केवल बच्चों का खेल है। दूसरा उपाय मन बहलाने का ढंग है। तीसरी विधि है क्रियायोग। तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्राणिधान क्रिया योग है।

अब आगे...

रणवीर ने एक बार एक प्रश्न का उत्तर देते हुए सूर्यमण्डल के ग्रहों का वर्णन किया था और अन्य ग्रहों पर रहने वाले मनुष्य की आयु का हिसाब लगाया था। हमारी पृथिवी सूर्य के गिर्द एक चक्कर 365 दिन 6 घण्टे और सैकण्ड में लगाती है अर्थात् हमारी पृथिवी पर एक वर्ष 365 दिन और 6 घण्टे का होता है। हमारी पृथिवी से सूर्य नौ करोड़ तीस लाख मील के अन्तर पर है; परन्तु सूर्य–मण्डल के कई ग्रह इससे अधिक दूरी पर हैं। सूर्य से मंगल की दूरी चौदह करोड़ सत्रह लाख मील है, बृहस्पति की दूरी 48 करोड़ 39 लाख मील, शनिश्चर का अन्तर 88 करोड़ 79 लाख मील। सूर्य–मण्डल का सबसे अन्तिम ग्रह है यम। अंगेजीवाले इसे 'प्लेटो' कहते हैं। वह सूर्य से 3 अरब 65 करोड़ मील की दूरी पर है। जो ग्रह सूर्य से जितनी दूरी पर है उसे सूर्य का एक चक्कर लगाने में उतना ही अधिक समय लगेगा, अर्थात् उसका एक वर्ष उतना ही बड़ा हो जाता है। इस गणित के अनुसार मंगल का एक वर्ष पृथिवी के साढ़े नौ वर्ष के बराबर होता है। शनिश्च का एक वर्ष हमारे 29 वर्ष और छः मास के बराबर होता है, और सबसे अन्तिम ग्रह यम का एक वर्ष पृथिवी के 247 वर्ष और साढ़े सात मास के बराबर है, अर्थात् जितनी देर में यम तारे पर एक वर्ष व्यतीत होता है, उतनी देर में हमारी पृथिवी पर 247 वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, उसके साथ–साथ सात मास और पन्द्रह दिन भी। और पृथिवी पर रहने वाले मनुष्य की आयु क्या है? केवल 40 वर्ष। भारत में 40 भी पूर्ण नहीं होते। यहाँ पहले आयु का औसत था 22 वर्ष, अब नेहरू जी ने बहुत–से प्रबन्ध किये तो आयु हो गई तीस वर्ष। तनिक सोचकर देखिये कि तारे के हिसाब से ये तीस वर्ष कितनी देर में समाप्त हो जाते हैं? यम तारे का एक वर्ष है लगभग 248 वर्ष का, छः मास हुए 124 वर्ष के, तीन मास हुए 62 वर्ष के और एक मास हुआ लगभग 20 वर्ष का, अर्थात् भारत के व्यक्ति की आयु यम के तारे के हिसाब से केवल 45 दिन है।

यह है मानव–शरीर की वास्तविकता जिसको हम अपना–आप समझ बैठे हैं, अपना साथी मान बैठे हैं। यह अपना–आप है नहीं, बहुत समय का साथी भी नहीं। यह केवल कुछ दिनों का खेल है। तुम्हारा वास्तविक अपनापन है आत्मा, और उसका साथी है वह सूक्ष्म शरीर जो इस शरीर के भीतर रहता है, जो जन्म–जन्म से इसके साथ चला आता है। बाहर का यह शरीर आता है और चला जाता है, आत्मा इसके साथ चला नहीं जाता। आत्मा के साथ केवल सूक्ष्म शरीर जाता है और यह सूक्ष्म शरीर ही वह पुस्तक है जो स्वाध्याय के लिए पढ़नी चाहिये। जन्म–जन्म से इस पुस्तक में प्रत्येक वह बात लिखी जा रही है, जिसे आपने किया या सोचा। प्रतिदिन इस पुस्तक में कोई नई बातें लिखी जाती हैं, इसलिए प्रतिदिन इसे पढ़िये। यदि इसमें अच्छी बात लिखी गई, किसी आवश्यकतावाले को दान देने, किसी दुःखी की सेवा करने या किसी निर्बल को सहायता देने की बात लिखी गई है तो प्रभु से प्रार्थना कीजिये कि इस प्रकार की अच्छी बातें और हों; अगर कोई खोटा कर्म हो गया है तो भी प्रार्थना कीजिये कि वैसा कर्म फिर न होने पाये।

यह है स्वाध्याय का, अपने–आप को पढ़ने का अर्थ! इस स्वाध्याय का महत्त्व कितना है, यह समझना हो तो शास्त्र के ये शब्द सुनिये–

"सारी पृथिवी को उसके सागरों और पर्वतों के समेत यदि कोई सोने से ढँक दे और इस सोने के साथ पृथिवी का दान कर दे तो इस दान का जो फल होता है वह स्वाध्याय का फल है।"

परन्तु सुनो, जो लोग इस प्रकार स्वाध्याय नहीं करते, सूक्ष्म शरीर की पुस्तक

को नहीं पढ़ते और इसमें आई बुराइयों को दूर करने का यत्न नहीं करते, उन्हें भी एक दिन यह पुस्तक पढ़नी होती है अवश्य। एक दिन–

दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन।
रहने में अचरज नहीं, जाय अचम्भा कौन।।

एक दिन जाना पड़ता है और तब सूक्ष्म शरीर की यह पुस्तक पन्ना–पन्ना करके खुलती है। एक के पश्चात् दूसरा पन्ना आत्मा की आँखों के सामने आता है। मनुष्य उसे देखता है और रोता है; परन्तु उस समय यह पुस्तक रोने की परवाह तो नहीं करती। उजले अक्षरों में, उजले चित्रों में इस जन्म की और पिछले जन्म की कहानी को वह आत्मा के समक्ष रख देता है। पढ़ते–पढ़ते, पन्ना उलटते–उलटते अन्तिम पन्ना आ जाता है जिसपर इस मानव–चोले से निकलने और दूसरे चोले में जाने की आज्ञा लिखी है। जब वह पढ़ता है कि अब बिच्छू या सूअर या साँप के चोले में जाना होगा तो रोता है, परन्तु अब रोने का क्या लाभ? 'जब तू कुत्ते की भाँति कामवासना में फँसा रहा; धर्म, समाज, नीति, किसी को तूने नहीं देखा, तो अब कुत्ते के शरीर में जाना होगा तुझे। चल, वह बाजार में खड़ी कुतिया तेरी माँ बनने की प्रतीक्षा कर रही है! उठ, तेरा समय हो गया है।' इस प्रकार वह पुस्तक कहती है। उस समय मनुष्य रोता और चिल्लाता है, पछताता है, परन्तु अब पछताने से होगा क्या? अरे, जिस समय पछताना चाहिए था, इस पुस्तक को पढ़ना चाहिये था, त्रुटियों को सुधारना चाहिए था, उस समय तो तूने ऐसा किया नहीं, अब रोने से क्या होगा? जब बुरा कर्म किया तब सोचा नहीं। अब फल सामने है तो रोने से वह बदलेगा नहीं। ईश्वर को गालियाँ देने से समाप्त नहीं होगा।

परन्तु यह पुस्तक केवल पाप करने वाले को ही नहीं पढ़नी पड़ती, धर्मात्मा को भी पढ़नी पड़ती है। अन्तिम समय पर उसके सूक्ष्म शरीर की पुस्तक भी खुल जाती है। एक पन्ना सामने आता है। उस पर लिखा है–तूने दान दिया, बहुत अच्छा किया। दूसरे पृष्ठ पर लिखा है–तूने निर्धनों के लिए औषधालय बनाया था, बहुत अच्छा किया। तीसरे पर लिखा है–तूने नंगे को कपड़ा दिया, एक लँगड़े की सहायता की। इस प्रकार प्रत्येक पृष्ठ पर कोई–न–कोई अच्छी बात लिखी है; प्रत्येक बार यह भी लिखा है 'अच्छा किया'। अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है– अब तुझे देवताओं का शरीर मिलेगा क्योंकि तू देवता बनकर अपना जीवन व्यतीत करता रहा। और मरने वाले के मुखमण्डल पर मुस्कराहट आने लगती है–

जा मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये, पूर्ण परमानन्द।।

लोग रोते हैं उस समय, मरने वाला नहीरोता–

जब तुम आओ जगत् में, जग हँसे तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसो जग रोय।।

ऐसी करनी कर मेरे भाई–

वो चाल चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी।
वो काम कर कि याद तुझे सब किया करें।।
जो ज़िक्र हो तेरा तो हो ज़िक्रे–ख़ैर ही।
और नाम तेरा लें तो अदब से लिया करें।।

परन्तु यह सब–कुछ तभी होगा जब प्रतिदिन उस पुस्तक को पढ़ोगे जो इस शरीर में विद्यमान है, जो आत्मा के लपेटे में बैठा है, जो जन्म–जन्म से इसके साथ चला आ रहा है और तब तक साथ रहेगा, जब तक आत्मा को जन्म–मरण के बन्धन से मुक्ति नहीं मिल जाती। यह है स्वाध्याय और उसका फल।

क्रियायोग की तीसरी आवश्यक बात है ईश्वर–प्रणिधान अपने–आप को ईश्वर के अर्पण कर देना। योग की भाषा में इसे 'ईश्वर–प्रणिधान, करते हैं। भगवान् कृष्ण ने गीता में इसे शरणागति कहा, महर्षि ने इसे उपासना का नाम दिया, भारत के सन्तों ने इसी को दासता और भक्ति कहकर इसका प्रचार किया। कबीर ने कहा–

युक्ति–मुक्ति माँगूँ नहीं, भक्ति–दान दे मोहे।
और कोई जाँचूँ नहीं, निस दिन जाँचूँ तोहे।।

और यह भक्ति भगवान् को कितनी प्यारी है, इसका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा–

जल ज्यूँ प्यारा माछली, लोभी प्यारा दाम।
माँ को प्यारा बालका, भक्त पियारा राम।।

भक्ति की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा–

और कर्म सब कर्म हैं, भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहे कबीर पुकार के, भक्ति करो तजि भरम।।

और दादू महाराज ने इसी भक्ति का वर्णन करते हुए कहा, "हे गोविन्द! तू ही मेरा गुरु है, तू ही मेरा गोस्वामी; तू ही मेरा ज्ञान है, तू ही मेरा देवता; तू ही ध्यान, तू ही मेरी पूजा है; तू ही मेरी आरती, तू ही मेरा तीर्थ है; तू ही मेरी जाति, तू ही मेरा शील है, सन्तोष है, मुक्ति है। तेरे अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए, क्योंकि दूसरे के लिए अब स्थान ही नहीं।

और प्रभु–भक्त देव दयानन्द 'आर्याभिविनय' में प्यारे प्रभु को कितने ही नामों से पुकारते हुए उससे कहते हैं– 'हे परम मित्र! जो (भक्त) आपको आत्मादिदान (आत्मसमर्पण) करता है, आप उसको व्यावहारिक तथा पारमार्थिक सुख अवश्य प्रदान करते हो। हे प्राणप्रिय! अपने भक्तों को परमानन्द प्रदान करना आपका सत्य व्रत है। प्रभो! यही आपका स्वभाव हमको सदा सुखदायक है। हे परमैश्वर्यवान् प्रभो! हम हृदय से अत्यन्त प्रेमपूर्वक आपको गावें, आपकी स्तुति करें, आपकी कृपा से हमारा परमैश्वर्य बढ़ता रहे और परमानन्द को प्राप्त हों।'

और ईश्वर–प्रणिधान का अभिप्राय लिखते हुए भक्त दयानन्द आदेश देते हैं कि "ईश्वर में विशेष भक्ति होने से, मन का समाधान होके, मनुष्य समाधियोग को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।"

यह है ईश्वर–प्रणिधान अपने–आप को उसके अर्पण कर देना। सच्चे हृदय से पूरे विश्वास के साथ कहो कि मुझे तेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। मेरा यह कर्म तेरे अर्पण है। मैंने अपना हाथ तेरे हाथ में दे दिया, जिधर तू चाहे उधर ले चल। माना कि मैं भूला रहा प्रभो! माना कि मैल चढ़ गई मुझपर, परन्तु अब तो ओ दीनदयाल! ओ दयासागर! करुणानिधि!

माना कि तेरी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं।
तू मेरा शौक देख मेरा इन्तजार देख।।

देख कि मेरा तेरे अतिरिक्त कोई नहीं, मुझे तेरे अतिरिक्त किसी की चाह नहीं।

ये तीन बातें–तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान हो जायें, तब ईश्वर का दर्शन मिलता है अवश्य। यह कहना ठीक नहीं कि ईश्वर दिखाई नहीं देता। दिखाई देता है अवश्य। परन्तु–

दीदार के तलब के तरीक़ो से बेख़बर!
दीदार की तलब है तो पहले निगाह माँग।।

हाँ! तप, स्वाध्याय और आत्मसमर्पण के द्वारा अन्तरात्मा की दृष्टि को उत्पन्न करो तो प्रभु–दर्शन होगा अवश्य, इसी शरीर में होगा, कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। बाहर भटकना चाहते हो तो भटको, विज्ञान के आविष्कारों में अपना मन लुभाओ, सरकस का खेल देखते रहो। परन्तु स्मरण रक्खो, माया के इस संसार में शान्ति नहीं मिलेगी–

सुकूने–दिल जहाने–बेशो–कम में ढूँढ़ने वाले!
यहाँ हर चीज मिलती है, सुकूने–दिल नहीं मिलता।।

माया के इस संसार में चलना चाहते हो तो चलो, दौड़ना चाहते हो तो दौड़ो, परन्तु लक्ष्य नहीं मिलेगा, अन्त में कहना पड़ेगा–

हम थक के गिरे, गिर के उठे, उठ के चले भी।
तुझ पै असर ए दूरिये–मंज़िल नहीं होता।।

बना लो बड़े–बड़े रॉकेट, ऐटम बम और हाइड्रोजन बम, परन्तु लक्ष्य सदा दूर रहेगा, क्योंकि इस मार्ग में लक्ष्य है ही नहीं। यह मार्ग–ही–मार्ग है, भटकना–ही–भटकना है। लक्ष्य पर पहुँचना है तो क्रियायोग के मार्ग का अपनाओ। तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान यह क्रिया योग है।

शेष अगले अंक में....

परन्तु यह पुस्तक केवल पाप करने वाले को ही नहीं पढ़नी पड़ती, धर्मात्मा को भी पढ़नी पड़ती है। अन्तिम समय पर उसके सूक्ष्म शरीर की पुस्तक भी खुल जाती है। एक पन्ना सामने आता है। उस पर लिखा है–तूने दान दिया, बहुत अच्छा किया। दूसरे पृष्ठ पर लिखा है–तूने निर्धनों के लिए औषधालय बनाया था, बहुत अच्छा किया। तीसरे पर लिखा है–तूने नंगे को कपड़ा दिया, एक लँगड़े की सहायता की। इस प्रकार प्रत्येक पृष्ठ पर कोई–न–कोई अच्छी बात लिखी है; प्रत्येक बार यह भी लिखा है 'अच्छा किया'। अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है– अब तुझे देवताओं का शरीर मिलेगा क्योंकि तू देवता बनकर अपना जीवन व्यतीत करता रहा। और मरने वाले के मुखमण्डल पर मुस्कराहट आने लगती है–

वैदिक प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं
तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि। यजु. 1.5

Today I take a vow;
Lord, help me to fulfil it.
I take a vow to follow
the path of TRUTH from this moment
Help me Lord, in my voyage
from falsehood towards TRUTH.

ओ व्रतों के दिव्य रक्षक
अग्नि, यह संकल्प मेरा–
व्रत करूं, पूरा सकूं कर,
यह कृपा कर, व्रत सफल हो,
मैं असत्य त्याग, धारण
सत्य को करता इसी क्षण।

महर्षि दयानन्द तीनों एषणाओं से परे थे

● खुशहाल चन्द्र आर्य

एषणायें यानि इच्छायें जिनसे मनुष्य बँधा हुआ रहता है, ये तीन प्रकार की होती हैं–(1) वित्तैषणा (2) पुत्रैषणा (3) लोकैषणा। इन तीनों एषणाओं ने महर्षि दयानन्द को छूआ तक नहीं था, जब कि इन तीनों एषणाओं से सभी मनुष्य लिप्त रहते हैं। इन्हीं की प्राप्ति में मनुष्य अपना पूरा जीवन समाप्त कर देता है, फिर भी ये एषणाएँ पूर्ण नहीं होतीं। मनुष्य अपनी एषणाओं को प्राप्त करने के लिए जितना अधिक प्रयत्न करता है और इनको कुछ सीमा तक प्राप्त भी करता है। परन्तु इनकी प्राप्ति से मनुष्य की भूख कभी नहीं मिटती बल्कि भूख और अधिक बढ़ती जाती है। इसलिए एषणाओं की प्राप्ति करना मनुष्य के लिए सुख का साधन नहीं बल्कि दुःख का कारण है। इसीलिए यजुर्वेद ने अपने चालीसवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में कहा है:–

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् अर्थात् इस संसार का त्याग भाव से भोग करो यानि इसमें लिप्त न हो। लालच न करो। यह धन किसी का नहीं है यानि ईश्वर का है। महर्षि का अपने मन के ऊपर पूरा अधिकार था। मन उनके अधीन था इसलिए स्वामी जी मन को जिधर ले जाना चाहते थे मन उसी तरफ चलता था। मन पर पूरा नियन्त्रण रखने वाला व्यक्ति ही अपने जीवन में सफल हो सकता है। महर्षि के अपने जीवन में सफल होने का सब से बड़ा कारण यही था कि उनका अपने मन के ऊपर पूरा नियन्त्रण था इसीलिए उनका इन तीनों एषणाओं पर पूरा अधिकार था। वे इनमें लिप्त नहीं थे। इसका संक्षिप्त विवरण इसी भाँति है।

वित्तैषणा :– महर्षि जी के पिता कर्षण जी तिवारी एक अच्छे जमींदार थे, रूपयों का लेन– देन भी करते थे और मोरवी राज्य की तरफ से इनको काफी अधिकार मिले हुए थे। वे एक अच्छे सत्ताधारी थे और प्रबन्ध को बनाए रखने के लिए वे कुछ सैनिकों को भी अपने पास रखते थे। इस प्रकार स्वामी जी एक अच्छे धनाढ्य परिवार में पैदा हुए थे और अपने माता–पिता की पहली सन्तान होने से काफी लाड़–चाव में उनका जीवन बीता था। पैसे की उनके पास कोई कमी नहीं थी फिर भी वे सच्चे शिव की खोज तथा मृत्यु के रहस्य को जानने के लिए नौजवानी में ही केवल 22 वर्ष की आयु में ही अपने घर को छोड़ दिया और देश को अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्डों से मुक्ति दिलाने के लिए अनेकों दुःखों व कष्टों को सहते हुए देश के चारों कोनों में भ्रमण किया और अपने जीवन में भी कितने ही अवसरों पर उन्हें लोभ व लालच दिया गया, पर उस लंगोट धारी संन्यासी ने अपने सिद्धान्तों पर अटल रहने के लिए उन लालच व प्रलोभनों को ठुकरा दिया और असत्य से कभी समझौता नहीं किया। वैसे तो उनके जीवन में ऐसी अनेकों घटनाएँ आती हैं। यहाँ पर केवल दो घटनाओं को लिख देना पर्याप्त समझता हूँ।

महर्षि जी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में यह सोचकर कि साधारण व्यक्तियों को समझाने की बजाय मुझे राजा–महाराजाओं से मिलकर उन्हें वैदिक धर्म की बातें समझानी चाहिएँ ताकि वेद प्रचार का कार्य तथा परोपकारी कार्य अधिक मात्रा में किये जा सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वामी जी उदयपुर के महाराजा सज्जन सिंह के पास पहुँचे। महाराजा स्वामी जी से बहुत अधिक प्रभावित हुए और उनको अपना गुरु मान कर वेद पढ़ने लगे। एक दिन महाराजा ने कहा कि स्वामी जी आप केवल मूर्ति पूजा का विरोध न करें बाकी सब काम आप अपनी इच्छा अनुसार करते रहें तो मैं आपको एक लिंग महादेव के मन्दिर का महन्त बना दूँगा जिसमें वार्षिक लाखों रूपयों की आमदनी है। आप अपनी जिन्दगी आराम से काट सकोगे। स्वामी जी ने महन्त बनने से इन्कार कर दिया, तब महाराजा सज्जन सिंह ने कहा कि, आप किससे बातें कर रहो हो, तब स्वामी जी ने कहा कि मुझे मालुम है कि मैं किससे बातें कर रहा हूँ। राजन्! आपकी आज्ञा का मैं उल्लंघन करूँ तो मैं अभी दौड़ लगाकर आपके राज्य की सीमा से निकलना चाहूँ तो रात भर में निकल सकता हूँ परन्तु उस परम् पिता परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करूँ तो उसके राज्य से बाहर कभी नहीं निकल सकता, इसलिए आप ही बतावें कि मैं आपकी आज्ञा मानूँ या ईश्वर की आज्ञा तब महाराजा ने कहा कि स्वामी जी आपको इतना बड़ा पद कोई नहीं दे सकता, आप विचार करें कि आपको क्या करना चाहिए। स्वामी जी ने कहा राजन्। यह सही है कि मुझे इतना बड़ा पद देने वाला कोई नहीं मिलेगा, तो आपको भी इतने पद को ठुकराने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। इन उत्तरों से महराजा बहुत खुश हुए और स्वामी जी से क्षमा प्रार्थना करने लगे। यह था स्वामी जी का वित्तैषणा के प्रति विरोधी भाव। दूसरी घटना यह है कि स्वामी जी जब उत्तराखण्ड का भ्रमण कर रहे थे तब वे जोशी मठ पहुँचे। जोशी मठ का महन्त स्वामी जी के आकर्षक शरीर, बल, बुद्धि, विद्या से बहुत प्रभावित हुए और स्वामी जी से कहा कि आप इस मठ के महन्त बन जाओ, मैं संन्यासी बनना चाहता हूँ, तब स्वामी जी ने कहा कि महन्त जी, मैंने पिता जी की करोड़ों की सम्पत्ति को ही ठोकर मार दी, तो आपकी सम्पति का महत्व ही क्या है? मैं तो किसी बड़े उद्देश्य के लिए ही घूम रहा हूँ, मुझे आपके मठ का महन्त नहीं बनना, यह कह कर आगे निकल गये। यह थी स्वामी जी की वित्तैषणा के प्रति उदासीनता।

पुत्रैषणा :– पुत्रैषणा होने का तो प्रश्न ही नहीं है। यदि पुत्रैषणा होती तो विवाह ही करवा लेते। जब स्वामी जी के माता–पिता को यह ज्ञान हो गया कि मूल शंकर (जो स्वामी जी का बचपन का नाम था) में कुछ वैराग्य के भाव आये हुए हैं, इसलिए इसका विवाह कर देना चाहिए और विवाह की तैयारी भी करने लगे। जब मूलशंकर को यह जानकारी हो गई कि उसके विवाह की तैयारी हो रही है, तब उसने माता–पिता को साफ कह दिया कि मैं विवाह नहीं कराऊँगा। छोटी बहन और चाचा जी की मृत्यु के बाद, मूलशंकर का वैराग्य और भी बढ़ गया था। बाईस वर्ष की भरी जवानी में उसके गृह–त्याग कर दिया। जीवन भर पूर्ण ब्रह्मचारी रह कर अपने उद्देश्य–शिव की खोज में पूरे जीवन की आहुति दे दी। इससे साफ सिद्ध होता है कि स्वामी जी को विवाह करवाने की बिल्कुल ही इच्छा नहीं थी। तब पुत्रैषणा होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। स्वामी जी के जीवन में एक घटना आती है कि एक बहुत सुन्दर औरत ने स्वामी जी से कहा, कि स्वामी जी मैं आप जैसा सुन्दर पुत्र चाहती हूँ, तब स्वामी जी ने कहा, माता जी! मैं तो आपका ही पुत्र हूँ, आप मुझे ही अपना पुत्र समझें। इससे बड़ा उदाहरण पुत्रैषणा न होने का और क्या हो सकता है?

लोकैषणा :–महर्षि का जीवन पढ़ने से ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने कितने ही बहादुरी के काम किये। जैसे चार घोड़ों की बग्गी को पीछे से पकड़ कर रोक लेना, लड़ते हुए खुँखार साण्डों के सींग पकड़ कर अलग–अलग कर देना। कर्ण सिंह जैसे बलशाली की तलवार पकड़ कर दो टुकड़े कर देना। अपने प्राण बचाने के लिए कितनों को पछाड़ कर फिर ऊँची दीवार को फलांग कर अपने प्राणों की रक्षा करना आदि अनेक घटनाएँ हैं, परन्तु स्वामी जी ने कभी भी अभिमान भरी बात नहीं कही और अपराधी को सदैव सजा न देकर क्षमा दान ही दिया। इससे उनकी निरभिमानता, विनम्रता, दयालुता आदि गुण स्पष्ट प्रकट होते हैं। जो व्यक्ति निरभिमानी, विनम्र, दयालु व परोपकारी होता है, वह कभी भी यश का भूखा नहीं होता। इसलिए महर्षि दयानन्द में लोकैषणा नाम–मात्र भी नहीं थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि जी ने इन तीनों एषणाओं पर विजय प्राप्त कर रखी थी।

180, महात्मा गान्धी रोड,
कोलकता–700007

एषणायें यानि इच्छायें जिनसे मनुष्य बँधा हुआ रहता है, ये तीन प्रकार की होती हैं–(1) वित्तैषणा (2) पुत्रैषणा (3) लोकैषणा। इन तीनों एषणाओं ने महर्षि दयानन्द को छूआ तक नहीं था, जब कि इन तीनों एषणाओं से सभी मनुष्य लिप्त रहते हैं। इन्हीं की प्राप्ति में मनुष्य अपना पूरा जीवन समाप्त कर देता है, फिर भी ये एषणाएँ पूर्ण नहीं होतीं। मनुष्य अपनी एषणाओं को प्राप्त करने के लिए जितना अधिक प्रयत्न करता है और इनको कुछ सीमा तक प्राप्त भी करता है। परन्तु इनकी प्राप्ति से मनुष्य की भूख कभी नहीं मिटती बल्कि भूख और अधिक बढ़ती जाती है। इसलिए एषणाओं की प्राप्ति करना मनुष्य के लिए सुख का साधन नहीं बल्कि दुःख का कारण है। इसीलिए यजुर्वेद ने अपने चालीसवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में कहा है:–

याद रखिये

परम ब्रह्म कभी किसी का साथ नहीं छोड़ते।
परम ब्रह्म ने कभी किसी का साथ नहीं छोड़ा।
परम ब्रह्म कभी किसी का साथ छोड़ेंगे नहीं।
परम ब्रह्म कभी किसी का साथ छोड़ सकते ही नहीं।
शरीर और संसार कभी किसी के साथ रहे ही नहीं।
शरीर और संसार कभी किसी के साथ रहते ही नहीं।
शरीर और संसार कभी किसी के साथ रहेंगे ही नहीं।
शरीर और संसार कभी किसी के साथ रह सकते ही नहीं।

कृष्ण मोहन गोयल
113, बाजार कोट, अमरोह

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–किसी को मारना जीव–हत्या कहलाती है। कीड़े, मच्छर, मक्खियाँ जानबूझकर या अनजाने में मारे जाते हैं, तो क्या ये भी जीव–हत्या कही जाएगी?

समाधान– हाँ, बिल्कुल कही जायेगी, क्यों नहीं कही जाएगी। आप मक्खी, मच्छर मारेंगे, तो फिर हत्या तो कही ही जायेगी। ध्यान में बैठते हैं, एक मक्खी आ गई। कान में गुनगुनाती है, तो आप हटा देते हैं। फिर बैठते हैं, तो वो फिर आती है। मक्खी में इतनी बुद्धि थोड़े ही है, कि आप हटाना चाहते हैं, तो वो हट जाए। वो तो बार–बार आती है। फिर व्यक्ति को गुस्सा आता है, तो वो फिर क्या करता है? सोचता है–अच्छा देखता हूँ कि वो फिर कैसे आती है। अब मक्खी आई, यूँ मारेगा। मच्छर आया, यूँ मारेगा। वो हिंसा है, पाप है। चाहे जानबूझकर मारे, चाहे अनजाने में मारे, पाप तो पाप ही है। अनजाने में किए गए पाप का दंड थोड़ा कम होता है। जानबूझकर करेंगे, तो दंड अधिक मिलेगा। अरे, मक्खी परेशान करती है, तो हटा दो। आप कमरे में मक्खी–मच्छर को क्यों आने देते हैं। कमरे मे जाली लगाओ। दरवाजे बंद रखो। खिड़की में जाली लगाओ। मच्छरदानी लगाओ, मच्छर नहीं आने दो। उसका उपाय करो। मारेंगे तो हिंसा होगी, पाप लगेगा।

अगर बिना मारे काम चलता है, तो क्यों मारें। हमारी आदत खराब हो जाएगी। जानबूझकर मारेंगे, क्रोधपूर्वक मारेंगे, तो निःसंदेह हिंसा के भागी बनेंगे। दुष्ट को दंड देने का विधान जरूर है, पर यदि आपने क्रोधपूर्वक दंड दिया, तो आप हिंसक हो जाएंगे। न्यायाधीश जो दंड देता है, वो क्रोध करके नहीं देता। दुष्ट को दंड देता है, पर बिना क्रोध किए। ऐसे ही आप मक्खी को हटा दें। बिना क्रोध किए। मच्छर को हटा दें। और कभी बहुत समझाने के बाद भी मच्छर नहीं मानता। बार–बार समझा दिया, मच्छर हटता ही नहीं। मक्खी को समझा दिया, लेकिन वो हटती ही नहीं। अब उसको दंड देना है। मान लो, चलो मारना ही है, तो बिना क्रोध किए मारो, तब तो ठीक है। जब आप क्रोध में आ के मारते हैं, तो हिंसा हो जाती है। अपने स्वभाव को बिगड़ने नहीं देना। क्रोध मत करना। क्रोध पूर्वक नहीं मारना। अब ऐसा करने में आपको कई साल लग जायेंगे। करो परिश्रम, क्रोध को जीतने के लिये।

शंका– क्या ब्रह्माण्ड में इस दुनिया के अलावा कहीं और भी ऐसी दुनिया है, जैसी इस पृथ्वी पर है?

समाधान– बिल्कुल है। इसमें कोई शंका नहीं है।

सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में इस बारे में लिखा है। ईश्वर सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ का कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं होता। आप और हम, जो थोड़ी–बहुत बुद्धि रखते हैं, जब भी कोई काम करते हैं, तो सोच–समझकर करते हैं। हम कोई फालतू काम नहीं करते। अगर कोई काम करने से कुछ भी लाभ नहीं है, तो हम बिल्कुल नहीं करेंगे। जब हम इतनी छोटी बुद्धि रखने वाले होकर भी, व्यर्थ में कोई काम नहीं करते, तो इतनी बड़ी सृष्टि बनाने वाला सर्वज्ञ ईश्वर ऐसा क्यों करेगा। ब्रह्माण्ड में अरबों–खरबों आकाशगंगायें हैं। एक–एक आकाशगंगा में खरबों–खरबों तारे हैं, उनके अपने–अपने सोलर सिस्टम्स हैं। तो सवाल उठता है, कि इतनी लंबी–चौड़ी दुनिया जो ईश्वर ने बनाई है, क्या यह व्यर्थ में बनाई है? अगर यहाँ प्राणी न रहते हों, इतनी बड़ी सृष्टि बनाना व्यर्थ है। हमारे इस सौर मंडल में कम से कम एक पृथ्वी पर तो जीवन है। यह प्रत्यक्ष दिख रहा है। मंगल पर जीवन नहीं मिला, बृहस्पति पर नहीं मिला, शुक्र पर नहीं मिला, बुध पर नहीं मिला, शनि पर नहीं मिला, न सही। विभिन्न ग्रहों में से एक ग्रह 'पृथ्वी' पर तो जीवन है। तो इसी हिसाब से अनुमान लगा लीजिये कि जैसे इस एक सौरमंडल में कम से कम एक पृथ्वी पर जीवन है। इसे ही प्रत्येक सौरमंडल में कम से कम एक ग्रह में तो निःसिंदेह जीवन होना ही चाहिये, अन्यथा वो बनाना व्यर्थ है। तो अनुमान–प्रमाण से सिद्ध होता है, कि और भी करोड़ों अरबों पृथ्वियाँ हैं। वहाँ भी हमारे जैसे ही मनुष्य, पशु–पक्षी, आदि प्राणी रहते होंगे। वहां भी इसी ईश्वर का शासन चलता होगा। वहाँ भी ऐसे ही चार 'वेद' होंगे, जैसे हमारी इस धरती पर हैं।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

पिछले अंक से आगे

चरित्र निर्माण हेतु ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मंत्रों पर विचार

● सरोज आर्या वर्मा

प्रार्थना के साथ सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर करने के लिये स्वाध्याय, सत्संग और समर्पण के रूप में पुरुषार्थ से उपासक अपने समस्त 'दुरितों' को दूर करने में सफल हो सकता है। इस मंत्र में स्पष्ट उपदेश है समस्त बुराइयों का छोड़ना अनिवार्य है। वहाँ भद्र के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि समस्त भद्र अर्थात् कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ प्राप्त हो जायें। क्योंकि भद्र का प्राप्त होना या न होना कर्मफल के रूप में है। अतः पूर्णरूप से सुखी होने के लिये आवश्यक है कि ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था पर विचार किया जाय।

ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था

अक्सर लोग कहते हैं कि जो भाग्य में होगा वही होगा अर्थात् ईश्वर की जैसी इच्छा होगी वही होगा। दूसरे शब्दों में हम (जीव) ईश्वर की इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं। इस विचार के मानने से सिद्धान्त हानि है, देखें कैसे? जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। पाणिनि के अनुसार (अष्टा. 1/4/54) ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न चेतन आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इसलिये वह ज्ञानपूर्वक इच्छानुसार कर्म करने में स्वतंत्र है। ऐसा न मानने का अर्थ होगा कि जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुणों को खो बैठा। तब उसका अस्तित्व ही कहाँ रहा? यदि वह कर्म करने में स्वतंत्र ही नहीं है तब मनुष्य और उसके द्वारा संचालित मशीन में क्या अन्तर रहेगा?

मनुष्य के अन्तःकरण की प्रवृत्ति भी जीव के कर्मस्वातन्त्र्य को सिद्ध करती है। प्रत्येक मनुष्य की यही भावना रहती है कि वह सोच विचार कर इच्छानुसार कार्य करे। यदि जीव कर्म करने में स्वतंत्र ही नहीं है तो उसे यह कहना ही व्यर्थ होगा कि अमुक कार्य करना चाहिए और अमुक नहीं।

वेदादि शास्त्रों में विधि–निषेधात्मक अर्थ जीवात्मा को लक्ष्य करके कहे गये हैं।

'सत्यं वद धर्मं चर' (तै. 2/11) सत्य बोलें, धर्म का आचरण करें।

'पशून्पाहि' (यजु. 1/1) पशुओं की रक्षा करो।

'संश्रुतेन गमेमहि' (अथर्व. 1/1/4) वेद के मार्ग पर चलें।

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्' (यजु. 40/2)

कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए।

और **'अक्षैर्मा दीव्यः'** (ऋ. 10/34/13) जुआ मत खेलो।

'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्' (अथर्व. 3/30/3) भाई भाई से द्वेष न करें।

इत्यादि सन्दर्भों में अनेकत्र जीवात्मा के लिये विहित कर्मों के अनुष्ठान तक निषिद्ध कर्मों के परित्याग का विधान होने से स्पष्ट है कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है।

कर्त्ता ही भोक्ता है, यही न्यायसंगत है। यदि जीवात्मा में स्वतंत्र कर्तृत्व नहीं है तो उसमें भोक्तृत्व भी नहीं होगा। महर्षि दयानन्द लिखते हैं

ईश्वर की व्यवस्था से अपने किये हुए शुभ और अशुभ आचरण वाले कर्म का सुख–दुःख फल भोगता है, वह इस शरीर में स्वतंत्र कर्त्ता और भोक्ता जीव है, ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिए।' (ऋ. 1/58/2 ; महर्षि दयानन्दकृतभाष्य से)

यदि ईश्वर ही मनुष्य के कर्म कराने का कारण होगा तो पाप–पुण्य के फल का भागी भी परमेश्वर ही होगा, जीवात्मा नहीं। क्योंकि मनुष्य ने वह कर्म स्वेच्छा से तो किया ही नहीं है। जैसे राज्य व्यवस्था के आदेश से फाँसी देने वाले जल्लाद को हत्या का अपराधी नहीं माना जाता।

यदि जीव ईश्वर की इच्छा से काम किया करे तो संसार में कहीं भी पाप न रहे। क्योंकि परमेश्वर स्वयं **'शुद्धमपापविद्धम्'** (यजु. 40/8) शुद्ध एवं निष्पाप है, वह कभी नहीं चाहेगा कि उसकी प्रजा कोई पाप करे। अतः जैसा पूर्व में लिखा है कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है किन्तु कर्मफल की प्राप्ति में ईश्वराधीन है, यही सही है। वेद में कहा है–

कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहहता कामैतत्ते।।
(यजु. 7/48)

इस संसार में कर्म करने वाले जीव हैं और फल देने वाला ईश्वर है, ऐसा समझना चाहिये। कामना के बिना किसी के भी द्वारा नेत्रों का बन्द करना और खोलना भी नहीं

शेष पृष्ठ 06 पर ☞

☞ पृष्ठ 05 का शेष

चरित्र निर्माण हेतु ...

किया जा सकता है, इसलिये सब मनुष्यों को विचारपूर्वक धर्म की ही कामना करनी चाहिये, इससे विपरीत ही नहीं, ऐसी ईश्वर की आज्ञा है।

वेदादि शास्त्रों के अनेक वचनों से प्रतीत होता है कि समस्त प्राणियों का नियंत्रण करते हुए परमेश्वर ही जीवों को धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म में निवृत्ति प्रदान करता है, किन्तु जीव के कर्म स्वातन्त्र्य के आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार करने से विदित होता है कि वेदादि शास्त्रों के वचन प्रेरणामूलक हैं। ईश्वरीय प्रेरणा से जीवात्मा की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं आती। परमात्मा कर्तव्याकर्तव्य की दृष्टि से जीवात्मा का मार्गदर्शन तो कर सकता है, लेकिन उसे उस मार्ग पर चलने के लिये विवश नहीं कर सकता, चाहे वह घोर पाप ही क्यों न करे। इस विषय में डॉ. राधाकृष्णन ने ठीक लिखा है–

जब लोग शैतान का कार्य कर रहे हों और ईश्वरीय इच्छा व व्यवस्था के नाम पर सब कुछ ईश्वर के मत्थे मढ़ रहे हों तब कर्मसिद्धान्त परमात्मा को संविधानिक शासक के रूप में प्रतिष्ठित कर नैतिकता पर बल देता है।' (डॉ. राधाकृष्णन, हिन्दु व्यू ऑफ लाइफ, पेज 49, 41)

आज अनेकानेक धर्माचार्यों का मत है कि उनके मत को स्वीकार करने से, (क्योंकि वे ईश्वर के विशेष कृपापात्र पुत्र या पैगम्बर हैं) स्थान विशेष की यात्रा करने से, नदी विशेष में स्नान करने से, तथाकथित धर्माचारियों, पण्डों–पुजारियों और दूतों के द्वारा निर्धारित विशेष उपासना विधि से अथवा शरीर पर विशेष चिह्नधारण करने आदि आदि से ईश्वर उनके पापों को क्षमा कर देगा। पाठक गण स्वयं विचार करें! ईश्वर पापियों के पाप क्षमा करने लगे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और अधिसंख्य मनुष्य दुष्कर्मों के अभ्यस्त हो जाएँगे। पापी मनुष्य परमात्मा का भय छोड़कर स्वच्छन्द होकर दुष्कर्मों में प्रवृत्त होकर गरीब, निर्बल, असहाय मनुष्यों पर अत्याचार कर दुःख पहुँचावेंगे। इससे सज्जन, धार्मिक और भले व्यक्तियों का जीवन दुष्कर ही हो जायेगा। संसार में अन्याय, अत्याचार और अराजकता का साम्राज्य होकर सर्वत्र अराजकता फैल जायेगी। यही नहीं मैत्री, करुणा, उदारता और परोपकार जैसी भावनाएँ भी समाप्त हो जायेंगी। अतः किये हुए कर्म का फल कर्ता को अवश्य ही भोगना पड़ता है, यही सत्य सनातन वैदिक धर्म का सर्वमान्य सिद्धान्त है। इस ध्रुव सत्य को स्वीकार करके ही किसी सीमा तक मानव दुष्कर्मों, दुर्व्यसनों और दुःखों से छूट सकता है, क्योंकि कर्म और उसके फल में कार्य–कारण सम्बन्ध है।

'ना भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि' (ब्रह्मवैवर्त. प्रकृति. अ. 37)

फलभोग के बिना कर्म का क्षय नहीं होता।

महाभारतकार का कथन है– **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'**

महर्षि मनु की घोषणा है– **'न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः'**

यह कभी नहीं हो सकता कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल हो जाए।

क्या प्रायश्चित करने से पाप क्षमा होते हैं? वस्तुतः जब कोई व्यक्ति किसी निन्दनीय कर्म को करके उसके कारण मन में खिन्नता का अनुभव करता है तब वह, मानो उसके दण्ड के रूप में, स्वयं कष्ट अनुभव करता हुआ यह संकल्प करता है कि 'भविष्य में इस प्रकार के दुष्कर्म कभी नहीं करूँगा' तो यह प्रायश्चित कहाता है। प्रायश्चित से पूर्वकृत पाप क्षीण नहीं होता, अपितु पापभावना क्षीण होती है। इसके फलस्वरूप मनुष्य के पापवृद्धि रुक जाती है और वह शुभकर्मों की ओर उन्मुख होता है। महर्षि मनु लिखते हैं–

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात् पापात् प्रमच्यते।

नैवं कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः।। (मनु. 11/230)

अर्थात्–कोई कितना भी पश्चात्ताप करे तो भी कृत कर्मों को तो भोगना ही पड़ता है। पश्चात्ताप से पाप का क्षय नहीं होता, हाँ आगे पाप करना बन्द हो जाते हैं।

महर्षि दयानन्द पंचमहायज्ञ विधि में लिखते हैं–

ईश्वर सब जगत् को उत्पन्न कर सबमें व्यापक होके अन्तर्यामीरूप में सबके पाप–पुण्यों को देखता हुआ, पक्षपात छोड़के सत्य–न्याय से सबको यथावत् फल दे रहा है। ऐसा निश्चित जानके ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन, वचन और कर्म से पापकर्मो को कभी न करें।'

यदि वर्तमान में कोई पाप न किया जा रहा हो फिर भी दुःख प्राप्त हो रहा है तो निश्चित मानिये कि यह पूर्व में या पूर्वजन्मों में किये गये दुष्कर्मों का ही फल है। ऐसा मानकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक तथा आनन्दपूर्वक भोगा जाय। ऐसी भावना अन्तःकरण में उत्पन्न होने पर दुःख की अनुभूति कम होगी और दुःख भी दुःख नहीं लगेगा।

अतएव परमेश्वर की अटूट न्यायव्यवस्था में अटल विश्वास व श्रद्धा रखते हुए अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए सदा स्मरण रखें–

न तो किसी के द्वारा अपनी स्तुति किये जाने से परमेश्वर प्रसन्न होता है और न किसी दुष्कर्मी से नाराज होता है। परमेश्वर की स्तुति करना मानव का परम धर्म है।

प्रथम प्रार्थना मंत्र की विशेषता

मंत्र में दुःखों को पूर्णरूप से नाश होने की भावना से **'दुरितानि'** से पूर्व **'विश्वानि'** विशेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ स्पष्ट आदेश है कि समस्त बुराइयों को छोड़ना अनिवार्य है क्योंकि एक भी दुर्गुण व्यक्ति को पतन की ओर ले जाने में समर्थ है। लोक व्यवहार में भी हम देखते हैं कि पात्र को पहले स्वच्छ किया जाता है, तब अच्छे पदार्थ उसमें रखे जाते हैं। अतः वेद मंत्र का उपदेश व्यवहार से भी सिद्ध है।

वेद मंत्र में प्रथम प्रार्थना है कि कोई दुर्गुण, कोई बुराई, कोई पाप, कोई चरित्र दोष या अनुचित व्यवहार जीवन न रह जाये। यहाँ कोई यह कह सकता है कि कुछ बुराइयों को छोड़ दें और कुछ जीवन का अंग बनी रहें और यह आशा की जाय कि कल्याण हो जायेगा, उन्हें नीतिकार चाणक्य की यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है, उन्हें अनेक जीवों के उदाहरण देकर मार्मिक शब्दों में मानव को सावधान करते हुए लिखा है कि–

कुरङ्ग–मातङ्ग–पतङ्ग–भृङ्ग, मीना हताः पंचभिरेव पंच।

एकः प्रमादी सः कथन्न हन्यते यः सेवते पंचाभिरेव पंच।।

अर्थात्– हिरण **'शब्द'** नामक विषय का भोक्ता होकर, हाथी **'स्पर्श'** नामक विषय का भोक्ता होने के कारण विशालकाय होने पर भी साधारण मानव के संकेतों का दास बनकर सर्कस में अनेक खेल खेलता है। पतंगा **'रूप'** के चक्कर में दीपक की लौ में अपना जीवन गंवा बैठता है। भौंरा **'गन्ध'** के वशीभूत होकर अपने जीवन को नष्ट करता है। मछली **'रस'** के वशीभूत हो मधुआरे के कांटे में फंस जाती है। आचार्य चाणक्य इन पांचों विषयों के आकर्षण और शक्ति की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि अकेले–अकेले 'विषय' में जीवन को विनाश की ओर ढकेलने की क्षमता है। नीतिकार चाणक्य का विभिन्न जीवों के माध्यम से इन प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम बताने का तात्पर्य यही है कि मननशील मानव अपने जीवन में एक भी दुष्प्रवृति, एक भी दुर्गुण, एक भी दुर्व्यसन को रहने न दे जो उसके भद्र अर्थात् कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ की प्राप्ति में बाधक हो।

इस मंत्र में जहाँ दुरितानि के लिये बहुवचन का प्रयोग हुआ है वहाँ भद्र शब्द में एकवचन निहित है। मंत्र में पठित 'भद्रं' पद का अर्थ धात्वर्थ = **'यदि कल्याणे सुखे च'** के आधार पर कल्याण या सुख किया जाता है, पर केवल इतना कहने से बात अस्पष्ट रह जाती है। महर्षि दयानन्द ने आर्षदृष्टि से इस अस्पष्टता को समझकर उक्त पद के अर्थ में **'अभ्युदय'** और **'निःश्रेयस'** पदों के उल्लेख द्वारा उसमें कल्याण और सुख की समस्त धाराओं का समावेश कर दिया है। **'अभ्युदय'** ऐहलौकिक कल्याण व सुख है और 'निःश्रेयस' पारलौकिक कल्याण व सुख है। इस प्रकार कल्याण व सुख का कोई अंश अभ्युदय और **निःश्रेयस** से बाहर नहीं रह जाता। महर्षि के विचार से भी विदित होता है कि **भद्र** = शान्ति, आनन्द, मोक्ष प्राप्ति सब एक ही हैं। शाश्वत शांति कौन प्राप्त कर सकते हैं, इनका स्पष्ट संकेत कठोपनिषद् में मिलता है।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।

तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।। (कठोपनिषद् 5/13)

उपनिषद्कार के अनुसार 'शाश्वती शांति' सदैव बनी रहने वाली शांति एक ही है और वह आत्मस्थ होकर ही प्राप्त होती है। आत्मस्थ वही होता है जो समस्त बुराइयों को दूर कर देता है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध पवित्र है वहीं शांति का वास है।

महर्षि दयानन्द ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है– **'जो परमात्मा प्रकृति और जीवादि के बीच में नित्य है तथा जो जीव उनके बीच में चेतन है। बहुत असंख्यात जीवादि पदार्थों के बीच में जो एक है तथा जो पृथिवी आदि स्वर्गपर्यन्त पदार्थों का रचन वा ज्ञान से सब कामों का विधान प्राप्त करता है उस परमात्मा को जो जीव अपने आत्मा से ध्यान से देखते हैं– उन जीवों को ही निरन्तर शान्ति व सुख प्राप्त होता है, अन्य को नहीं।'** (वेदान्तिध्वान्तनिवारणम् लघु. 84)

'यद् भद्रं तन्न आसुव' में 'यद्' पद परमात्मा के प्रति पूर्ण आस्था व विश्वास को प्रकट करता है। जीव अल्पज्ञ है, उसे बोध नहीं कि उसके लिये क्या भद्र है। जन्म–जन्मान्तरों के कर्मजाल में बंधा हुआ जीव कैसे जान सकता है कि उसके लिये क्या भद्र है और क्या नहीं। अतः उपासक परमेश्वर के प्रति पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ समर्पित भाव से प्रार्थना करता है कि

हे प्रभु जो भद्र हो वह मुझे प्राप्त कराइये।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ

अथा ते सुम्नमीमहे। (ऋ. 8/98/11)

हे विशाल सृष्टि का निर्माण करनेवाले प्रभो! आप ही हमारे पिता हैं। हे आनन्द स्वरूप जगन्नियन्ता प्रभो! जो परम भद्र है, परम आनन्द है, उसकी याचना करते हैं। हमें अपनी कृपा से परमानन्द प्रदान कीजिए।

487/नमक की मण्डी
कियानपोल जयपुर बाजार
(राज.)

'महर्षि दयानन्द के जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग'

● मनमोहन कुमार आर्य

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती इतिहास में हुए ज्ञात वैदिक विद्वानों में अपूर्व विद्वान हुए हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का आविर्भाव सृष्टि की उत्पत्ति के आरम्भ में 1.96 अरब वर्ष पहले हुआ था। हमारे पूर्वजों ने इस ग्रंथ रत्न की प्राणपण से रक्षा की। उनके पुरुषार्थ का ही परिणाम है कि आज हमें यह ग्रंथ सुरक्षित प्राप्त हो रहे हैं। विदेशी विद्वान मैक्समूलर तक ने वेदों की रक्षा में प्राचीन भारतीयों द्वारा किये गये पुरुषार्थ पर आश्चर्य व्यक्त किया है। महर्षि दयानंद ने युवावस्था में सत्य धर्म, ईश्वर तथा जीवात्मा के सत्य स्वरूप की खोज के लिए अपने माता–पिता, बन्धुओं व घर का त्याग कर सारे देश का भ्रमण किया और विद्वानों व योगियों की संगति कर ज्ञान प्राप्त किया। **प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी गुरु विरजानन्द सरस्वती** के यहां लगभग ढ़ाई वर्षों तक आर्ष व्याकरण का अध्ययन कर उनका अध्ययन पूरा हुआ था। इन्हीं गुरुजी की प्रेरणा से आपने असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन किया। असत्य के मण्डन में ईश्वर के स्थान पर पाषाण व अन्य धातुओं की मूर्ति बनाकर ईश्वर की पूजा का खण्डन भी सम्मिलित था। इसके अतिरिक्त अवतारवाद, फलित ज्योतिष, जन्मना जातिप्रथा, मृतक श्राद्ध आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों का भी खण्डन किया। महर्षि दयानंद के धार्मिक–सामाजिक अन्धविश्वासों व कुरीतियों के खण्डन का कार्य केवल भावनाओं पर आधारित नहीं था अपितु इसके पीछे वेदों की विचारधारा, मानवजाति और देश का कल्याण तथा मनुष्यों को जीवन के चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की उपलब्धि आदि अनेकानेक लाभ प्राप्त कराना प्रमुख उद्देश्य था जिसके लिए उन्होंने अपने समस्त निजी सुखों का त्याग किया था। वह खण्डन का कार्य वेद प्रमाण, युक्ति, तर्क व सृष्टिक्रम के अनुरूप सत्यासत्य की परीक्षा कर किया करते थे। **सृष्टि के इतिहास में हम महर्षि दयानंद के समान समाज–देश व विश्व का हितैषी दूसरा ज्ञानी व पुरुषार्थी विद्वान महापुरुष नहीं पाते। अतः उन पर 'न भूतो न भविष्यति' लोकोक्ति पूरी तरह से सुशोभित होती है एवं वह इस उपमा के पूर्ण अधिकारी हैं।** आज के लेख में हम महर्षि दयानन्द के जीवन से जुड़े तीन प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द ने साधु ईश्वर सिंह को चारों वेदों के दर्शन कराये

महर्षि दयानन्द मार्च सन् 1879 में वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए हरिद्वार के कुम्भ मेले में आये हुए थे। वहां पं. ईश्वर सिंह जी निर्मला साधु स्वामी दयानंद जी से उनके डेरे पर मिले। स्वामी जी ने उन्हें कुर्सी पर बिठाया और स्वयं भी बैठ गये। साधु ने कहा– चारों वेदों के दर्शन हमें करवाइए। वे (स्वामीजी) भीतर से उठा लाये। साधु जी ने बड़े आनन्द से दर्शन किये फिर स्वामीजी ने महीधर तथा सायण कृत भाष्यों की भूलें व दोष उन्हें बताये। उन्होंने कहा कि इन धूर्तों ने अर्थों के महा अनर्थ किये हैं। यह प्रसंग सूचित करने का हमारा अभिप्राय यह है कि उन दिनों भारत में एक स्थान पर चार वेदों का उपलब्ध होना संसार के प्रमुख आश्चर्यों में से कम नहीं था। महर्षि दयानंद के पास यह चारों वेद उपलब्ध थे और वह इन्हें हमेशा अपने पास रखते थे। हमें प्रयास करने पर भी अभी तक ज्ञात नहीं हो सका कि महर्षि को उस समय जब कि भारत में वेदों का कभी किसी प्रेस से मुद्रण नहीं हुआ था, हस्त लिखित चार वेद कहां, किससे व कब प्राप्त हुए थे? परन्तु उन्होंने पुरुषार्थ कर इन्हें प्राप्त कर एक बहुत असम्भव कार्य को सम्भव बनाया था। हम यह भी अनुमान करते हैं कि यदि महर्षि दयानंद उन दिनो इस कार्य में प्रवृत्त न होते तो सम्भव था कि वेद हमेशा के लिए लुप्त हो जाते और वेद मन्त्रों के सत्य अर्थों का फिर सृष्टि की शेष अवधि में किसी को ज्ञान ही न होता। वेदों का संसार में सबसे अधिक महत्व है। यह इस कारण कि संसार में यदि सबसे अधिक मूल्यवान व पवित्र वस्तु कोई है तो वह ज्ञान है। इसीलिए ईश्वर प्रदत्त वेद मंत्र 'गायत्री मंत्र' में ईश्वर से श्रेष्ठ बुद्धि अर्थात् ज्ञान की प्रार्थना व याचना की गई है। गायत्री मंत्र में 'धियो यो नः प्रयोदयात्' कह कर ईश्वर से हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग में जो कि केवल वेद मार्ग है, चलाने की प्रेरणा करने के लिए प्रार्थना की गई है। मनुष्य जीवन के लिए संसार का सबसे पवित्रतम व सर्वोत्तम ज्ञान 'वेद' है। इसकी रक्षा करना संसार के प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य व धर्म है। यह कार्य महर्षि दयानंद ने किया इसीलिए वह संसार के पूज्य व सम्माननीय हैं। चार वेद आज से 146 वर्ष व उससे भी पहले से महर्षि दयानंद के पास उपलब्ध थे, इस महत्व के कारण हमने यह प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किया है। हमारे गुरु व मित्र आर्य विद्वान स्व. श्री अनूप सिंह जी हमें एक प्रसंग सुनाया करते थे कि जब स्वामी विवेकानंद जी अमरीका गये तो वहां लोगों ने स्वामी जी से कहा कि स्वामी जी आप भारत से आये हैं। आप कृपया हमें वेद दिखाइये? वह वेदों के दर्शन करने के लिए लालायित थे। तब उनको स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि तुम्हें पता नहीं कि वेद कितने बड़े हैं। चारों वेद इतने बड़े हैं कि वह जहाज में नहीं आ सकते, इसलिए मैं उन्हें अपने साथ नहीं ला सका। यह बात श्री अनूप सिंह जी ने अनेक अवसरों पर हमें कही थी। अतः जब चार वेदों की मंत्र संहिताओं की दो भागों में प्रकाशन की योजना 'मैसर्स विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली' द्वारा बनाई गई तो हमारे गुरुजी ने हमें कहा कि हम प्रकाशक से निवेदन करें कि वेदों को दो जिल्दों में नहीं अपितु एक ही जिल्द में छापें जिससे हम गर्व से कह सकें कि हमारे परमात्मा का ज्ञान इकट्ठा व एक ही जिल्द में है, यह विभाजित व खण्डित नहीं है। दो जिल्दों में वेद के छपने से वह बात नहीं होगी जो एक जिल्द में छपने से होगी। इससे यह भी सिद्ध होगा कि वेद की पुस्तकें इतने बड़ी नहीं हैं कि पानी के जहाज में अमरीका न ले जायी जा सकें। हमारे निवेदन पर प्रकाशक श्री अजय आर्य जी ने चारों वेदमंत्र–संहिताओं को एक जिल्द व दो जिल्दों में ग्राहकों को लेने की सुविधा प्रदान की थी।

मार्च 1879 के हरिद्वार कुम्भ में अद्वैतवादी परहमंस आनन्दवन संन्यासी ने महर्षि दयानंद का वेद मत 'त्रैतवाद' स्वीकार किया और अपना अद्वैत मत छोड़ दिया

मार्च 1879 में महर्षि दयानंद ने हरिद्वार के कुम्भ में अपना डेरा जमाया हुआ था और यहाँ उपदेश,प्रवचन व लोगों के शंका समाधान किया करते थे। एक दिन प्रातः समय में चारों ओर से तम्बू के द्वार खुले हुए थे। अकस्मात एक संन्यासी जिसका नाम आनन्दवन था, परमहंस के वेष में कफनी पहले और शिर मुड़ाये हुए सामने दिखाई पड़े। कोई दस विद्यार्थी उसी आकृति के उसके संग थे। स्वामी जी उसे सामने देखकर खड़े हो गये । तम्बू के द्वार तक आकर उसका स्वागत करके भीतर ले जाकर गद्दी पर बिठलाया। अनुमान से उनकी आयु अस्सी वर्ष से न्यून नहीं थी। शरीर से बलिष्ठ तथा फुर्तीले सक्रिय थे। बैठते ही दोनों मुस्करा कर शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हो गये। दोनों संस्कृत बोलते थे। स्वामी जी के डेरे के लोग उनके हावभाव से समझते थे कि जीव ब्रह्म की एकता तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' पर विवाद था। साढ़े छह बजे प्रातः से आरम्भ होकर ग्यारह बजे का समय हो गया। उस समय जोगी संतनाथ ने आकर भोजन के लिए कहा। स्वामी जी ने परमहंस जी से कहा। उसने उत्तर दिया कि जब तक इसका निर्णय न हो ले, मैं भोजन नहीं करूंगा। ग्यारह बजे के पश्चात् स्वमी जी के आदेशानुसार वैद्य जी चारों वेद तथा 60–65 अन्य पुस्तकें स्वामी जी के सन्दूक से निकाल कर लाये और स्वामी जी के सामने रख दीं। स्वामी जी उनमें से निकाल निकाल कर प्रमाण स्वामी आनन्दवन को दिखलाने लगे। दो बजे तक ऐसे ही चलता रहा। दो बजे के पश्चात् दोनों खड़े हो गये और कुछ बातें परस्पर करने लगे। इस परमहंस ने दो बजे के पश्चात् अपने शिष्यों से कहा– दयानंद के मत को मैंने स्वीकार किया तुम भी ऐसा ही मानो। फिर बिना भोजन किये चले गये। देश भाषा (बोलचाल की भाषा हिन्दी) नहीं बोलते थे। जब कभी (पहले कभी डेरे पर उपदेश प्रवचन सुनने) आते (थे) तो मुस्करा कर आनन्द से खड़े–खड़े चले जाते। जब स्वामी जी से पूछा गया कि यह (महानुभाव) कौन हैं तो आपने कहा कि यह बड़ा विद्वान संन्यासी है। पहले अपने को ईश्वर अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता (के सिद्धांत को) मानता था अब हमारे समान जीव व ब्रह्म को पृथक–पृथक् (अर्थात द्वैत को) मानता है। इस घटना के बाद इन परमहंस स्वामी आनन्दवन संन्यासी जी का कोई वर्णन महर्षि दयानन्द के जीवन में नहीं मिलता। यदि महर्षि दयानंद के सिद्धांतों को स्वीकार करने के बाद यह भी उनके प्रचार में सहायक बनते तो देश को बहुत लाभ होता।

निर्मला साधु जोत सिंह स्वामी दयानन्द से वार्तालाप कर उनका अनुयायी बना

उपर्युक्त कुम्भ के अवसर पर ही एक दिन जोत सिंह निर्मला साधु एक बजे मिलने आया ओर स्वामी जी से बातचीत करने लगा। वह प्रत्येक शब्द व्यंग से बोलता था। इस पर वैद्य जी (स्वामीजी के सहयोगी व अनुयायी) को क्रोध आया। वह बोल उठे, चुप अन्यथा तेरे मुख को ठीक कर दिया जाएगा। स्वामी जी ने उन्हें रोक दिया और समझाया कि यह मुझ से बातचीत कर रहा है। तुम बीच में हस्तक्षेप मत करो। अन्ततः वह क्रोधित होकर बाहर निकल आया और इसी प्रकार से वह दो दिन तक आता रहा और बातचीत करता रहा। तीसरे दिन स्वामी जी व्याख्यान से उठे तो वह इतना प्रभावित हुआ कि एकदम हाथ जोड़कर रोने लगा। स्वामीजी के चरणों में गिरकर कहने लगा कि आप मुझे कृतार्थ कीजिए। जो कठोर कटु वचन मैंने कहे उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। स्वामीजी उसे समझाते रहे। उसने रात का भोजन भी वहीं किया। फिर वहां रहने लगा तथा दृढ़ आर्य बन गया। इस घटना में स्वामी जी का यह गुण भी प्रकट होता है कि उनसे असभ्यतापूर्वक बात करने वाले व्यक्तियों की बातें भी वह ध्यान से सुनकर उनका निराकरण करते थे। यही कारण था कि उन्हें अपने विरोधियों पर सफलता प्राप्त हुआ करती थी। यह घटना इसका जीवन्त उदाहरण है।

हम आशा करते हैं कि पाठक इन विचारों को उपयोगी पायेंगे। हम पाठकों को महर्षि दयानन्द के पं. लेखराम व स्वामी सत्यानंद रचित जीवन चरितों को पढ़ने का निवेदन करेंगे जो महाभारत व रामायण की ही तरह रोचक व ज्ञानवर्धक हैं एवं इनमें वर्णित प्रसंग जीवन को सत्प्रेरणा देने के साथ धर्म का सत्य स्वरूप भी प्रस्तुत करते हैं।

196, चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोन–09412985121

आचार्य मेधाव्रत कृत दयानन्ददिग्विजयम् महाकाव्य में नारी के अधिकार

● शोध छात्रा उषा पन्त

आदिकाल से ही सम्पूर्ण विश्व में स्त्री पुरुष का अभिन्न अंग रही है, चाहे वह विश्व की कोई भी सभ्यता या समाज रहा हो। परिवार एवं समाज की उन्नति में नारी का योगदान तथा उसकी सहिष्णुता के गुण के कारण ही उसे पृथ्वी की उपमा दी गयी है। भारतीय समाज में यदि नारी की स्थिति पर दृष्टि डालें तो कई उतार–चढ़ाव देखने को मिलते हैं। वैदिक काल में नारी जाति का बहुत मान सम्मान था, वे शास्त्र चर्चाओं में भाग लेती थीं, परन्तु मध्यकाल में नारी पूर्णतया प्रताड़ित, उपेक्षित तथा अपमानित होती रही, उसका सम्मान घटने लगा, वैदिक मान्यताएँ एवं सिद्धान्त विलीन होने लगे, नारी की सामाजिक स्थिति एव गरिमा में कुठाराघात हुआ और उसकी स्वतन्त्रता पर पूर्ण रूप से अंकुश भी लग गया। घर पर कैद इन महिलाओं की दिनचर्या कैवल दैनिक कार्य तक सीमित रह गयी थी। इस समय समाज में बाल–विवाह, बहुपत्नी विवाह, बेमेल विवाह, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा तथा अपहरण जैसी सामाजिक समस्याओं ने स्त्रियों के जीवन को अंधकारमय बनाकर कठोर रूढ़ियों में जकड़ दिया। ऐसे घोरतम अंधकार के समय स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। आपने भारत भ्रमण के दौरान जब स्त्रियों की दुर्दशा देखी तो उनकी पीड़ा को समझकर, अनुभव किया और नारी के मानवाधिकार का बीड़ा उठाया।

नारी के सामाजिक अधिकार व कर्तव्य

आचार्य मेधाव्रत ने अपने महाकाव्य दयानन्ददिग्विजयम् में स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र का वर्णन किया है। स्वामी दयानन्द की दृष्टि में नारी सम्मान की पात्र तथा भृत्या, पुत्र, पति एवं पशुओं की रक्षिका है। वे ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या पढ़ती हैं, तथा उसके भी पुत्र की भाँति संस्कार होते हैं। दासता की श्रृंखला में आबद्ध नारी की पीड़ा को स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया तथा उन्हें उससे मुक्ति दिलाई।

स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण उदार तथा सुधारवादी था। उन्होंने वेदों का गहन अध्ययन किया और अन्त में इस निर्णय पर पहुँचे कि बहु–विवाह और बालविवाह तो हिन्दू परम्परायें नहीं हैं। उन्होंने विधवाविवाह को उचित बताया और समाज में विधवाविवाह को आगे बढ़ाया, और विधवाओं की दशा को सुधारने का प्रयास किया और देश में अनेक विधवाश्रमों की स्थापना की।

कवि ने महाकाव्य के एकविंश सर्ग में बालविवाह का इस प्रकार विरोध किया है कि उन्होंने किसानों को इस प्रकार उपदेश दिया है जैसे–कच्चे खेत को काट लेने से अन्न नष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार छोटी उम्र में जो सन्तान का विवाह करता है, उसका वंश बिगड़ जाता है, सन्तान में सुख और उन्नति का सदा अभाव बना रहता है। इसलिए बालविवाह की यह कुरीति शीघ्र ही समाप्त हो जानी चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने अक्षतयोनि विधवा स्त्रियों को नियोग द्वारा दुबारा सनाथ बनाकर, जगत में अधम, शीघ्रबोध और व्यभिचार नष्ट किया। बाल–विवाह के प्रभाव से जो विधवाएँ आज करोड़ों की संख्या तक पहुँच गई हैं, उनका अक्षतयोनित्व सिद्ध होने पर पुनर्विवाह तथा क्षतयोनित्व सिद्ध होने पर नियोग कराकर उन्हें अनेक प्रकार के पापों से बचाया है। तथा नारी को उसके कर्तव्यों का बोध कराते हुए पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किये हैं।

नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी विजय–पताका फहराती हुई अपने महिमामय ओजस्वी रूप के साथ द्योतमान होती है। नारी की ही प्राथमिक भूमिका परिवार–निर्माण की है, परिवार में वह आदर्श पत्नी, आदर्श गृहिणी और आदर्श माँ के रूप में वर्णित है।

माँ संतान की प्रथम गुरु है, वह संतान को शिक्षित करने की क्षमता रखती है, जन्म के पश्चात् शुद्ध उच्चारण के साथ–साथ बालक को सुसंस्कारी भी करती है। अतः कन्या रूप में उसकी शिक्षा पर वेद में विशेष वर्णन है।

स्वामी दयानन्द ने पति के प्रति स्त्री के कर्तव्यों का वर्णन किया है, स्त्री का सर्वप्रथम कर्तव्य है कि वह पति के आचरण को सुधारे क्योंकि पति के ऊपर उसके स्वप्नों का संसार खड़ा है। यदि पति उसका है, तो वह सौभाग्य शालिनी है, अन्यथा उसका समस्त जीवन ही नीरस है। स्वामी दयानन्द ने आर्य देवियों को मन्दिर–मन्दिर मठों आदि स्थानों में आना जाना और साधु सन्यासियों के दर्शन के लिए इधर–उधर भटकना उचित नहीं बताया है। उनके पति ही गुरु और देव हैं। सदा मन वचन और कर्म से पति की सेवा करनी चाहिए।

स्वामी दयानन्द ने नारी को उत्तम माता, पवित्र पुत्री और सूर्य के प्रादुर्भाव करने में प्राची दिशा के समान बताया है। नारी ही नवरत्नों को उत्पन्न करती है अतः पुरुषों का कर्तव्य है कि, वे स्वयं ही वेदोक्त मार्ग में चलकर उन नारियों को स्ववंश की देवी मानकर अपने शील सदाचार से उनका सत्कार करें। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने नारी की दशा में परिवर्तन कर समाज में उनको सम्मानित किया।

स्वामी दयानन्द का मानना है कि नारी के स्वयं के प्रति भी कुछ कर्तव्य होते हैं। वह प्रथम अवस्था में कम से कम सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या शिक्षा पाकर अपने सदृश पति को प्राप्त करें।

नारी का स्वयं के प्रति कर्तव्य है कि वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखती हुई, वस्त्राभूषणों से अपने को सज्जित रखे। जिससे सत्यं एवं शिवं के अतिरिक्त सुन्दरम् तत्वों का भी उसके जीवन में समावेश हो।

माता–पिता के प्रति उसका कर्तव्य यह है, कि वह विवाह के पश्चात् भी उन्हें न भूले, तथा सर्वदा उनके सुख दुःख का ध्यान रखे। पति को वह उत्तम भोजन, मृदु वाणी, उत्तम रीति से सँभाले, तथा पति के लिए घृत आदि का संचय करे। सन्तान के प्रति कर्तव्यों का पालन करती हुई स्त्री उन्हें उत्तम विद्या तथा सुशिक्षा से युक्त करती है। तथा बालकों को प्रेम पूर्वक पालते हुए उन्हें शुभ गुणों से विभूषित करे एवं धर्मात्मा बनाए। इस प्रकार नारी के कर्तव्यों तथा अधिकारों का निदर्शन किया गया है।

नारी का सामाजिक अधिकार–शिक्षा

नारी विधाता की सबसे विलक्षण कृति और संसार की सर्वोत्तम सृष्टि है, वह सफल राष्ट्र का आधार है। समस्त मानवीय सृष्टि उसकी कोख से न केवल जन्म लेती है, बल्कि उसके ममतामय पवित्र आँचल में अपनी पहचान भी प्राप्त करती है। अपनी मधुर लोरियाँ सुनाकर नारी ही समस्त संसार को स्वर्गमय बनाने का महान उत्तरदायित्व वहन करती है, जिसे सुनकर नारी के प्रति श्रद्धा से मस्तक अवनत हो जाते हैं।

स्वामी दयानन्द ने जब अपने कार्य क्षेत्र में पदार्पण किया तब सर्वप्रथम नारी शिक्षा के लिए कार्य प्रारम्भ किया। उनका मानना था कि मानव जाति की उन्नति स्त्री शिक्षा पर निर्भर है। नारी शिक्षा ही राष्ट्र को सशक्त व आत्मनिर्भर बनाने का सर्वोत्तम उपाय है। एक माँ ही अपने बच्चे की प्रथम गुरु होती है। यदि वही अनपढ़ होगी तो भावी पीढ़ी अनपढ़ व मूर्ख होगी। विद्या का कोष ही अक्षय कोष है। जो संस्कार माँ अपनी सन्तान को दे सकती है, वह विश्व का कोई विद्यालय नहीं दे सकता है। यही कारण था कि स्त्री शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता का प्रचार–प्रसार कर स्वामी दयानन्द जी ने कई कन्या पाठशालाएँ व गुरुकुलों की स्थापना कर स्त्रियों को विभिन्न सम्मानित व प्रतिष्ठित पदों पर स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

स्वामी दयानन्द ने शताब्दियों से बन्द विद्या के द्वारों को नारी जाति के लिए खोल दिया। अपने परिश्रम से उन्होंने नगर–नगर और गांव–गांव में समाज मन्दिर का निर्माण किया और नारी समाज में नव जागरण की लहर को जन्म दिया है, आज वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। स्वामी दयानन्द ने नारी को उसके कर्तव्यों का बोध कराया, उसे यज्ञ तथा उपासना का पुरुषों के समान अधिकार दिया तथा घर पर उसका साम्राज्य स्थापित कराया।

स्वामी दयानन्द ने नारी शिक्षा के विषय में बतलाया है कि जन्म के पांचवे वर्ष तक माता द्वारा बालक व बालिकाओं को शिक्षा, छठे वर्ष से आठवें वर्ष तक पिता द्वारा शिक्षा दी जाती है, और नवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपनी सन्तानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् पूर्ण विद्वान और विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हो, वहाँ अपने बालक और बालिकाओं को भेज देते थे।

स्वामी दयानन्द कहते हैं, कि प्राचीन आर्यावर्त में नारी ही घर की लक्ष्मी थी, अपने पतियों पर देवतुल्य भक्ति रखती थी, प्रजा के लिये साक्षात् मंगलकारिणी देवी थी, उस समय नारी अपने राष्ट्र व धर्म के अभ्युदय के लिए हमेशा तत्पर रहती थी। जिसका उल्लेख आचार्य मेधाव्रत ने अपने महाकाव्य में इस प्रकार किया है–

गृहश्रियः श्रीपतिदेवभक्तयः सदा प्रजामंगलमूर्तयः स्त्रियः।
स्वराष्ट्रधर्मोदयसिद्धिमातरो दयार्दचित्ता गृहनीतिचन्द्रिकाः।।

वेद कालीन समाज में स्त्री का सम्बन्ध केवल पारिवारिक जीवन से ही नही था, अपितु सामाजिक जीवन में भी उसे अपना विकास करने का अवसर दिया जाता था। वैदिक युग में बालकों के समान बालिकाओं की शिक्षा की भी व्यवस्था थी। ब्रह्मचर्याश्रम पूरा करने के पश्चात् ही लड़की का विवाह युवा पति से होता था। स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था के कारण समाज में शिक्षित स्त्रियों की कमी नहीं थी, वेद कालीन स्त्रियां पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करती हुई सामाजिक जीवन में भी स्वतन्त्र रूप से भाग लेती थीं।

प्राचीन भारत की राजकन्यायें अनेक विद्याओं और कलाओं में निपुण थीं। वह चतुराई से अपने राज्य का संचालन करती थीं, जिससे भारत–माता का मुख चन्द्रमा की तरह चमकता था। इस सन्दर्भ में कवि के निम्नलिखित श्लोक को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है–

स्वराज्यसंचालनकर्मशिक्षितानरेन्द्रकन्या रणयज्ञदीक्षिताः।
अनेकविद्यासुकलाभिमण्डिताअमण्डयन्नर्यमहीं महीयसीम्।।

नारी के धार्मिक अधिकार

स्वामी दयानन्द ने नारी को धार्मिक कृत्यों में भाग लेने तथा यज्ञोपवीत धारण

शेष पृष्ठ 09 पर

आधुनिक इतिहास में वेटिकन का सर्वाधिक कुत्सिन व काला अध्याय

● हरिकृष्ण निगम

राष्ट्रसंघ की जेनेवा–स्थित मानवाधिकार समिति द्वारा पादरियों के यौनाचरणों पर पोप के राजदूत सिलवानो टोमासी की सफाई

कदाचित हमें विश्वास न होगा कि पिछले कुछ दिनों में ही कैथोलिक चर्च के साथ–साथ वेटिकन के वर्तमान धर्मगुरु पोप फ्रान्सिस और कुछ पूर्ववर्ती पौन्टिफ जैसे पोप बेनेडिक्ट सोलहवें अथवा पोप पायस बारहवें के कार्यकाल में व्याप्त विश्वव्यापी यौनाचरणों पर पर्दा डालने की साजिश के लिए राष्ट्रसंघ ने भी संज्ञान लेकर कड़े कदम उठाए हैं। वर्षों से चले आ रहे सर्वत्र पादरियों के विश्व यौनाचरण पहले ही दुनियाँ के करोड़ों ईसाई धर्मानुयाइयों को चौंकाते व सन्यास्त करते रहे थे।

आधुनिक इतिहास में पहली बार राष्ट्रसंघ ने स्वयं वेटिकन को कटघरे में डालने का निर्णय लेकर पहली बार जेनेवा में सार्वजनिक रूप से 'होली सी' को वर्षों से भारत सहित अनेक देशों के हजारों पादरियों व कार्डिनलो पर बच्चों व अवयस्कों से समलैंगिक यौनाचरणों व अनेक साध्वियों या 'ननों' का यौन–शोषण व अपराधों के दबाने के आरोप में उत्तर देने के लिए बुलवाया है। क्या इससे अधिक लज्जाजनक चारित्रिक अशुचिता का विवाद अन्यत्र कहीं हो सकता है?

हमारे देश का खोजी व 'सर्वज्ञ' अंग्रेजी श्रव्य–दृश्य व मुद्रित मीडिया इस देश के नागरिकों से द्रुतगति से होने वाले इन कलंकित घटनाक्रमों को छिपाता है और टिप्पणियां करने से कतराता है जब कि आज का हर प्रमुख पत्र हिन्दुओं के किसी भी साधु–संत के विरुद्ध जांच प्रकरण के बहाने सारी आस्था पर निन्दात्मक टिप्पणियां करने से लाखों शब्दों का मसाला एक व्यंजन की तरह प्रकाशित करने में आनंदित होता है।

कैथोलिक आस्था का यह काला अध्याय नया नहीं है और वर्षों से इन खुलासों से सिर्फ पश्चिमी समाचार पत्र ही नहीं बल्कि उनके अनेक समूहों पर महिलाओं व साध्वियों को धर्मगुरुओं व सम्प्रदाय के सहधर्मियों की वर्षों तक ''यौन–दासता'' की अपहृत बन्दी के रूप में रखे जाने पर दर्जनों पुस्तकें भी हैं यह पुरानी बातें नहीं हैं। हाल की अतिरेकी कहाए जाने वाले मोरमन 'चर्च का चर्च ऑफ जीसस क्राइस्ट ऑफ लेटर डे सेन्टस' (एफ.एल.डी.एस.) की केरोलिन जेसप की 400 पृष्ठों की आत्मकथा व भारत की सिस्टर जेस्मी की आत्म कथा चर्च की महामारी जैसे यौन–कुटैवों की पोल खोल देती है। देश के महिलाओं व मानवाधिकारों के संरक्षक अंग्रेजी मीडिया के कर्णधार जो उनके पक्ष में एक विक्षिप्त नेता व सम्पादक अपनी बहुआयामी लाखों शब्दों की टिप्पणियां छापते हैं उन्हें भी कैथोलिक चर्च के इस कुत्सित पक्ष को देखने का समय नहीं है। भारत के ईसाई जनसंख्या वाले बड़े क्षेत्रों जैसे केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा और पूर्वोत्तर के राज्यों में साध्वियों–ननों से कान्वेन्टों में बलात्कार, उन्हें मनोरोगी घोषित कर उनकी आवाज दबाना, आत्महत्या के प्रकरण व अवयस्कों से समलैंगिक सम्बंधों की चर्चा यदा कदा होती रहती है पर हमारे देश में मात्र हिन्दुओं से सम्बंधित किसी एक प्रकारण को महीनों तक उछाला जाता है। यहां तक कि अनेक बड़े 'प्रीस्ट' व कार्डिनल तक महिलाओं के विरुद्ध यहां से अमेरिका वायुमान यात्रा से ग्रोपिंग या विकृत व्यवहार पर पहुंचने पर गिरफ्तार भी किए गए पर उसपर किस तरह उच्च स्तरों पर हमारे मीडिया में पर्दा डाला गया यह सामान्य शोध का विषय एक सामान्य पत्रकार के लिए भी बन जाता है।

हम विस्मृत नहीं कर सकते हैं कि वेटिकन के हाल के एक दूसरे समाचार से यह खुलासा हुआ था कि पिछले दो वर्षों में 'पैन्तजर' पोप की संज्ञा पाने वाले बेनेडिक्ट सोलहवें ने लगभग उन 400 पादरियों के 'धार्मिक चोगे' उतरवाने (डीफ्राकिंग) का आदेश दिया था जिन पर बलात्कार व अवयस्कों व बच्चों से समलैंगिक सम्बंध रखने का आरोप था। वेटिकन की स्वीकारोक्ति के अनुसार सन् 2010 के बाद के दो वर्षों में यूरोप और एशिया के अलावा अनेक देशों में पादरियों के विरुद्ध विस्मयजनक व अविश्वसनीय आरोप लगे थे जिसे एक विस्फोट से कम नहीं माना जा सकता है। वेटिकन द्वारा दिए चिन्ताजनक आंकड़ों में यह कहा गया था कि सन 2011 में 200 पादरियों व 124 धर्मगुरुओं पर सन् 2012 (कुल 384) में ऐसे यौनाचरणों के अभियोग के कारण चर्च से 'डिफ्रॉक' अथवा पवित्र लबादे उतरवाकर निष्कासित किया गया था। सन 2008–09 में ऐसे निकाले व प्रतिबंधित मठाधीशों की संख्या 171 थी।

वेटिकन की विज्ञप्ति ने स्वीकार किया कि ऐसे आंकड़ों का जो आज तक अन्दरूनी गोपनीय माने जाते थे उनको सार्वजनिक रूप से जारी करना आधुनिक इतिहास में पहली बार हुआ है। अब तक वेटिकन में पोप जिन अन्दरूनी कानूनों की गोपनीयता को अपनी कार्यप्रणाली का अभिन्न अंग मानते रहे हैं उनमें उनके द्वारा नियंत्रित बैंकों के भ्रष्टाचरण, मादक द्रव्यों की तस्करी, तानाशाहों से धर्मान्तरण के लिए वसूला कालाधन और छोटे–बड़े विपरीत विश्वासों वाले देशों में जनसांख्यिक दबाव व परिवर्तन कराना प्रमुख होते थे। पर उपर्युक्त आंकड़ों ने यह जगजाहिर कर दिया कि सन् 1930 के बाद पहली बार यह आंकड़े उनकी वार्षिक रिपोर्ट का अंग बनेंगे।

वेटिकन के जेनेवा में राजदूत आर्चबिशप सिलवानो टोमेसी ने हाल में राष्ट्रसंघ की मानवाधिकार समिति के समक्ष आठ घण्टे तक वार्ता कर विश्वव्यापी आलोचना का उत्तर देने का प्रयास किया पर कहा जाता है कि ईसाई विश्व में आज भी उनकी सफाई से संतुष्ट होने वाले लगभग कोई नहीं है। साथ ही साथ नए पोप फ्रांसिस अपने जनसम्पर्क व नई नीतियों से सार्वजनिक छवि उज्ज्वल करने में लगे हैं।

वे अनेक लोगों को सन्तत्व–सेन्टहुड घोषित करने में जुटे हैं। वेटिकन के ही एक समाचारपत्र ने खुलासा किया है कि 'होली सी' विभाग ने एक 'मूल्य सूची' भी बनाई है कि अमुख विशाल धनराशि के बदले उनके नाम 'पवित्र सन्तत्व' मिलने वालों की सम्भावित सूची में रखे जाते हैं। यहा तक कि वाशिंगटन के व्हाइट हाउस के प्रवक्ता जेकार्नी ने हाल में इस विषय पर राष्ट्रपति ओबामा को भी गम्भीर रुझान रखने का संकेत दिया है। कुछ भारतीय कार्डिनलों, क्लेरिक्स व पूर्व धर्मगुरुओं के 'सन्तत्व' की सम्मान सूची में रखे जाने के समाचार आए थे जिससे देश में धर्मान्तरण के कार्य को मनोवैज्ञानिक रूप से निर्बोध धर्मनुर्यायिओं का सबलीकरण किया जा सके। धनराशि व पैसे के बदले सन्तत्व के लिए लुभाना उस समय की याद दिलाता है जब पोप बड़े–बड़े सम्राटों, ड्यूक व तानाशाहों को स्वर्ग में प्रवेश करने का प्रमाण पत्र देते थे। पोप की सुरक्षा में लगे स्विस सैनिकों के समूह ने इंग्लैंड के गार्जियन पत्र में यह भी खुलासा किया है कि वेटिकन के भीतर ही समलैंगिकों का एक नेटवर्क वर्षों से काम करता है। कमांडेन्ट एलमार मेडर ने हाल में अपने अनुभव के आधार पर हाल में कहा।

ए–1002, पंचशील हाइट्स,
महावीर नगर, कान्दिवली (प.),
मुम्बई 400067
दूरभाष 28606451, 9820215464

☞ *पृष्ठ 08 का शेष*

आचार्य मेधाव्रत कृत...

करने का अधिकार दिया है। स्वामी दयानन्द ने नारी को उपनयन तथा वेदाध्ययन का सम्पूर्ण अधिकार प्रदान कर प्राचीन काल की भांति मातृ समाज को उसके गौरव पद पर पहुँचाया है।

स यन्महिम्ना महिलाजनः पुन
स्ववेदविद्याध्ययनाधिकारवान्।
सुमन्त्रशिक्षामुपवीतदीक्षया प्रपद्य भेजे
निजगौरवश्रियम्।।

स्वामी दयानन्द ने नारी जाति के लिए वेद मंत्रों द्वारा पवित्र वेद विद्या प्रदान का अधिकार आघोषित किया, उनका मानना था कि नारी के विकास से ही स्वदेश का अभ्युदय होगा, जीवन की उज्ज्वलता का मूल उद्‌गम स्थान नारी के मन की शुभ भावना है।

धार्मिक अधिकारों में ईश्वरोपासना का भी महत्वपूर्ण स्थान है, नारी को ईश्वर की उपासना करने का पूर्ण अधिकार है। सन्ध्या नारी के नैत्यिक कृत्यों का एक अग है जिसे नारी अपने जीवन में करती हुई प्रभु से पिता आदि सम्बन्ध स्थापित करती हुई दैनिक कार्यों को करती है।

स्वामीजी का मानना था कि नारी धर्मज्ञान और विविध विज्ञान से अलंकृत होकर सद्गुणशालिनी बनेगी, तो अवश्य ही उनकी कोख से जन्मे हुए पुत्र और पुत्रीगण परम धार्मिक बनेंगे।

निष्कर्ष–कवि ने अपने महाकाव्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा नारी के अधिकार का वर्णन किया है। स्वामी दयानन्द ने नारी को उसके अधिकार व कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया है और नारी के सामाजिक अधिकार शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है। नारी जाति के उत्थान, उनकी उन्नति एवं समृद्धि के सम्बन्ध में किये गये प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण, प्रशंसनीय, अतुलनीय व अद्वितीय हैं। उन्होंने नारी के धार्मिक अधिकारों की पुष्टि की। उन्होंने नारी को वेदाध्ययन, यज्ञ, ईश्वरोपासना आदि अधिकार प्रदान किये हैं।

एल.एस.एम. राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, पिथौरागढ़
(उत्तराखण्ड)

पत्र/कविता

वेद प्रचार से ही विश्वशांति सम्भव है

चारों वेद ईश्वरीय ज्ञान के ग्रंथ हैं जो सृष्टि के प्रारम्भ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा द्वारा मानव जाति को प्राप्त हुये थे। मनुष्यों में स्वभाविक ज्ञान नहीं होता इसलिये ईश्वर ने जन सृष्टि का निर्माण किया तो मनुष्यों को संसार में किस प्रकार रहना है क्या करना है, और क्या नही करना बताना आवश्यक था इसलिये वेदों का ज्ञान दिया गया। कुछ समय पहले शिकारी जंगल से भेड़ियों के झुन्ड से लगभग 15 वर्ष के एक बालक को पकड़ कर लाये जो कुछ भी बातचीत नहीं करता था केवल हा, हू करता और चीखता चिल्लाता था तथा जानवरों की तरह अपने हाथ पैर जमीन पर लगा कर चलता था। शायद छोटी आयु में ही उसे भेड़ियों ने उठा लिया होगा और वह जंगल में उनके साथ ही रहने लगा होगा। उसको स्नान कराकर कपड़े पहनाये जाते और बोलना सिखाने का चल्न किया गया परन्तु उसने कपड़े फाड़ दिये। काफी यत्न के बावजूद उसे बोलना नहीं आया। आखिर कुछ वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई। संसार में हम देखते हैं कि मनुष्य के बच्चे का पहला गुरु उसकी माता, फिर पिता और बाद में अध्यापक अथवा गुरु होता है जो उसे शिक्षा देते हैं। बाद में अभ्यास द्वारा वह शिक्षा का विकास कर सकता है। इस प्रकार विज्ञानकों ने अनेक प्रकार के उपकरण अर्थात मशीनें इत्यादि बनाई हैं। परन्तु प्रारम्भ में बेसिक शिक्षा तो किसी अध्यापक से ही प्राप्त की होगी।

इस प्रकार चारों वेदों में अनेक प्रकार की शिक्षायें मूलरूप से वर्णन की गई हैं। हमारा धर्म भी वैदिक है परन्तु भूलकर हम हिन्दु कहलाने लगे हैं।

आज संसार में चारों ओर अशांति का वातावरण है अर्थात आतंकवाद फैला हुआ है। महाभारत युद्ध के बाद कई मत और सम्प्रदाय चल पड़े हैं जिनके नाम मुसलमान, सिख, यहूदी, ईसाई इत्यादि हैं जिन सब की अलग अलग विचार धारायें हैं इसलिये एक दूसरे के शत्रु बने हुए हैं और अपनी–2 संख्या बढ़ाने में लगे हैं। सुन्नी मुसलमान शिया मुसलमानों को और अलकायदा तथा तालिबान और इसलामिक स्टेट वाले सब सम्प्रदायों के लोगों को मार रहे हैं। इस प्रकार सारा संसार आतंकवाद से ग्रस्त है। इस प्रकार अनेक लोग बिना किसी कसूर के मारे जा रहे हैं। भारत में तो कश्मीर के बारे में पाकिस्तान ने आतंक फैला रखा है जो परस्पर बातचीत से ही इस समस्या का समाधान होना चाहिये। बिना किसी दोष के लोगों को मारना कोई अच्छी बात नहीं है अपने मत भेद परस्पर बातचीत से दूर करने चाहिये।

इस प्रकार हजारों व्यक्ति शरणार्थी बनकर अपना घर छोड़ कर दूसरे देशों में जा रहे हैं। ऐसे आतताई लोगों के विरुद्ध तो सयुंक्त राष्ट्र संघ को कड़ी कारवाई करनी चाहिये।

वेद ससांर में सब से पुराने ग्रंथ माने जाते हैं परन्तु महाभारत से कुछ समय पहले ही लोग वेदों को भूल चुके थे। इस युग में महर्षि दयानन्द ने वेद का प्रचार प्रारम्भ किया था। उन्होंने वेदों को ढूंढ़ा तथा उनका हिन्दी में भाष्य करना प्रारम्भ किया परन्तु अकाल मृत्यु के कारण इसे पूरा नहीं कर सके। वेदों का भाष्य करने से पहले संक्षिप्त रूप से यह वर्णन किया कि वेदों में सब प्रकार की विद्याओं का वर्णन है। वेद का ज्ञान सब मनुष्यों के लिये है। यजुर्वे 26/2 में कहा गया है 'यथेमां वांच कल्याणी मा वदानि'......

अर्थात् वेद का ज्ञान सब मनुष्यों के लिये है। यजुर्वेद 32/3 में यह स्पष्ट कहा है 'न तस्य प्रतिमाऽस्ति उस ईश्वर की कोई मूर्ति नहीं है। वेदों में एक भी पत्र ऐसा नहीं है जिसमें कहा हो कि उस ईश्वर की इस प्रकार की मूर्ति बना कर पूजा की जाये। यजुर्वेद 40/8 में यह कहा है सपर्यगा चुछक्र मकायमऽस्नाविरम... अर्थात वह निराकार है और नस नाडियों के बन्धन से रहित है। वेद में कृण्वन्तो विश्वमार्यम शब्द आया है अर्थात संसार को श्रेष्ठ बनाओ। वेद में शांति पाठ का मन्त्र आया है अर्थात संसार में सर्वत्र शांति हो जल में, पृथ्वी में आकाश मे सर्वत्र शांति हो। वेद में स्पष्ट कहा गया है कि ईश्वर हमारा पिता है, हम सब उसके पुत्र हैं इसलिये सब भाई रहें। इसलिये सब मनुष्यों में भ्रातृभाव होना चाहिये। भूमि हमारी माता है ऐसा भी कहा है। वास्तव में सारा ससांर एक कुटुम्ब के समान है वसुधै कुटुम्बकम की भावना होनी चाहिये। एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि तुम्हारे में कोई छोटा बड़ा नहीं है, सब समान हैं। वेद में किसी के प्रति हिंसा की मावना नहीं हो ऐसा कहा है मा हिंसी' अर्थात मन वचन कर्म से हिंसा न करें। वेद में अधिकतर सामूहिक प्रार्थनायें हैं अर्थात ईश्वर हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग पर चलाये। वेद में गावो विश्वस्य मात्रम कहा है अर्थात गौ संसार की माता है, वह हम सब को दूध–दही–मक्खन–घी इत्यादि पांच गव्य उपलब्ध कराती है इसलिये उसे मारना नहीं चाहिये।

आर्य समाज के किसी वैदिक विद्वान द्वारा वेद मन्त्रों पर आधारित एक पुस्तक लिखनी चाहिये जिसका अग्रेजी में भी अनुवाद हो और सारे संसार में उसका प्रचार हो। संसार के सब लोग अपने–अपने धर्म का प्रचार करते हुये आर्य अर्थात श्रेष्ठ बनें तथा सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलें। तभी संसार में सुख और शांति हो सकती है। ऋग्वेद के संगठन सूक्त में कहा है कि हम सब मिलकर चलें, मिलकर बातचीत करके अपने मनों को एक जैसे बनायें अर्थात संगच्छध्वम संवदध्वम समवो मनानसी जानताम'.....

सववेद पढ़े सुविचार बढ़े
चढ़ें सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहे ऋजु पंथ गहें
परिवार कहें वसुधाभरको।
ध्रुव धर्म धरें पर दुख हरें तन
त्याग तरें भव सागर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता हम
आर्य करें निज जीवन को।
हम आर्य करें सब जग को।

अश्विनी कुमार
सी–233, नानक पुरा, नई दिल्ली–21
फोन 26871636

स्वामी श्रद्धानन्द जी नेता थे गुणवान

जो मानव संसार में करते अच्छे काम।
कर जाते हैं विश्व में, अपना ऊँचा नाम।।
अपना ऊँचा नाम, धन्य है उनका जीवन।
करते हैं यशमान, प्रेम से उनका सज्जन।।
सुख चाहो यदि मीत, रात–दिन करो भलाई।
पाओगे सम्मान, मार्ग है यह सुखदाई।।

स्वामी श्रद्धानन्द जी, नेता थे गुणवान।
भारत माँ की कर गये, जग में ऊँची शान।।
जग में ऊँची शान, प्रभु के भक्त निराले।
देशभक्त बलवान, बहादुर थे मतवाले।।
ऐसा नेता यहाँ, न अब तक कोई आया।
जिसने निज सर्वस्व, देश की भेंट चढ़ाया।।

जगत् गुरु दयानन्द के, वे थे शिष्य महान।
अग्रेज़ों से वे लड़े, जाने सकल जहान।।
जाने सकल जहान, गज़ब के थे संन्यासी।
भूलेंगे ना कभी, सन्त को भारतवासी।।
काँग्रेस अध्यक्ष, बने थे काम किया था।
नेता थे निर्भीक, जगत् में नाम किया था।।

पापी इसाई,भवन, करते थे अन्याय।
भारतीयों पर रात–दिन, जुल्म रहे थे ढाय।।
जुल्म रहे थे ढाय, कुकर्मी अत्याचारी।
आतंकित थे सुनो, भारती सब नर नारी।।
अद्भुत शुद्धि चक्र, चलाया था स्वामी ने।
अंग्रेज़ों का राज्य, हिलाया था स्वामी ने।।

मोहन दास गाँधी अगर, करते नहीं विरोध।
हो जाता संसार को, वेद धर्म का बोध।।
वेद धर्म का बोध, आर्य जग बन जाता।
पापी पाकिस्तान, जगत में नजर न आता।।
वेद विरोधी दुष्ट, नास्तिक कहीं न होते।
राम कृष्ण के पुत्र–पुत्रियाँ सुख से सोते।।

भारत के नेता अगर, वेद धर्म लें जान।
स्वामी श्रद्धानन्द की, शिक्षाएं लें मान।।
शिक्षाएँ लें मान, सत्य पथ को अपनाएं।
वीर बहादुर बनें, राष्ट्र की शान बढ़ाएं।।
भारत जग का गुरु, पुनः फिर बन जाएगा।
भारत का यशगान, जगत सारा गाएगा।।

पं. नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य
आर्यसदन बहीन, जनपद पलवल (हरि.)
चलभाष क्रमाँक–9813845774

सार-सार गहि लीजिए

● भद्रसेन

आज अनेक धर्म प्रचलित हैं, जहां उन सब का अलग-अलग अस्तित्व है, वहां सब के अपने-अपने धर्मग्रन्थ भिन्न-भिन्न हैं। इस के साथ अनेक धर्मों में मान्यता प्राप्त धर्मग्रन्थ अनेक हैं। प्रत्येक धर्म का विशेष धर्मग्रन्थ भी पर्याप्त विशाल काय है। उस में अनेक बातों का वर्णन, विश्लेषण होता है। आज के वैज्ञानिक युग में अपनी विवशताओं, व्यस्तताओं के कारण उस-उस धर्म को मानने वाला भी अपने धर्म-ग्रन्थ की सभी बातों का पालन नहीं कर सकता। अधिकतम की पहली विवशता यह होती है, कि उन में इतनी शिक्षण योग्यता नहीं होती है, कि वे स्वयं अपने धर्मग्रन्थ की मूलभाषा को पढ़ और समझ सकें। कई बार भाषा के ज्ञान की भी कठिनता आड़े आती है, तो कहीं अर्थभेद से निर्णय में अड़चन आती है।

दूसरी विवशता आर्थिक परिस्थितियों के कारण कारोबार को इतना अधिक समय देना पड़ता है, कि तब अपने धर्मग्रन्थ को पढ़ने या उस की सभी बातों के पालन के लिए पूर्ण समय नहीं मिलता। यह ठीक है, कि अधिकतर रुचि, श्रद्धा, लगाव की कमी के कारण अन्य व्यस्तताओं का बहाना भी लेते हैं। पुनरपि सामयिक परिस्थितियों और व्यस्तताओं को सामने रख कर उदार और व्यावहारिक बुद्धि या दृष्टिकोण से यही कहना चाहिए, कि किसी धर्म के विस्तार की कोई सीमा नहीं है, पर हंसों की तरह सार को

अपनाना चाहिए

अनन्तपारं किलशब्दशास्त्रम् स्वल्यं तथायु र्बहवश्च विघ्ना:।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु,
हंसैर्यथाक्षीरमिवाम्बु मध्यात्।।
पंचतन्त्र-कथामुख-1

विद्या का अपार विस्तार है, पर आयु बहुत थोड़ी है, और उस पर भी उसे हड़पने वाले विघ्न पग-पग पर हैं। अत: जैसे हंस फोक को छोड़ कर सार को ही अपनाता है, वैसे ही (जीवन के लिए धर्म का) जो रूप अत्यन्त अपेक्षित है, उस को ही अपनाना चाहिए। क्योंकि

दुनिया में तो सब कुछ होता है
मगर लिया वही कुछ जाता है,
जो किसी के अनुकूल होता है।

हो सकता है, अपनेपन के कारण या अधिक श्रद्धावश कुछ का विचार हो, कि धर्मग्रन्थ के सारे सिद्धान्त अर्थात् सारा धर्मग्रन्थ व्यवहार्य है। जब हम उस-उस धर्म के मानने वाले वृद्धों, मर्मज्ञों, प्रबन्धकों, प्रचारकों के व्यवहार को देखते हैं, तो भर्तृहरि के भाव स्मरण हो उठते हैं-

'जब मैं था अल्पज्ञ, करी सम मद से अंधा हुआ महान्।
और समझ सर्वज्ञ स्वयं को करता था अतिशय अभिमान।।
पर विद्वानों की संगति से हुआ मुझे जब कुछ कुछ ज्ञान।
ज्वर सम उतर गया मद मेरा समझा निज को मूर्ख महान्।।
गोपालदास गुप्त कृत अनुवाद

अर्थात थोड़ा जानने वाला मदमस्त हाथी की तरह अपनेपन में अकड़ता है, पर वास्तविकता का ज्ञान हो जाने पर ज्वरग्रस्त की तरह उस का घमण्ड ठण्डा पड़ जाता है।

यदा किञ्चिज्ज्ञो ऽहं द्विप इव मदान्ध: समभवम्।
तदा सर्वज्ञो ऽ स्मीत्यभवदवप्लिं मम मन:।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजन सकाशादवगतझ।
तदा मूर्खो ऽ स्मिाति ज्वर इव मदो मे व्ययगत:।।
नीति-8

अत: कहा जा सकता है, कि जब किसी को धर्म के विविध पक्षों का अधूरा ज्ञान होता है, तो वह मदमस्त हाथी की तरह अपने धर्मग्रन्थ को पूर्ण मानता हुआ 'थोथा चना बाजे घना' की उक्ति को चरित्रार्थ करता है। (इसका एक उदाहरण श्री प्रेमचन्द के 'सेवासदन' में वर्णित 'सदन' के चरित्र में मिलता है। जब उस के विवाह के अवसर पर बारात गमन से पूर्व जो चर्चा होती है) परन्तु जब विवेकशीलों के संसर्ग से किसी को वास्तविकता का बोध होता है, तो वह कह उठता है कि अब मुझे पता चला, मैं तो बहुत ही कम जानता हूं, और तब ज्वर की तरह उसका अपनी मान्यताओं की पूर्णता का अभिमान काफूर हो सकता है।

हां, धार्मिक जनों के व्यवहार से भी यही वास्तविक स्थिति सामने आती है, कि किसी भी धर्म की सभी बातों का पालन करना अत्यन्त कठिन है। इसी को दूसरे शब्दों में **'अप टू डेट'** और **'आउट आफ डेट'** शब्दों से भी कहा जा सकता है। अपने धर्म के जितने अंश का मैं पालन करता हूं, उतना ही मेरी दृष्टि से व्यावहारिक 'अप टु डेट' है। पर धर्मग्रन्थ में वर्णित जिस अंश का या धर्म के जिस विशद रूप का मैं केवल वाणी से वर्णन करता हूं और उस का जीवन में धारण/ पालन नहीं करता, इस का यही अर्थ है, कि मेरी दृष्टि से वह अंश अव्यावहारिक है और केवल कथनमात्र होने से 'आउट आफ डेट' ही है।

इस सारे विवेचन का अभिप्राय यही है, कि 'सरल-सुखी जीवन' की दृष्टि से धर्म के अनिवार्य पक्ष को ही ग्रहण करना चाहिए। अन्यथा कर्मकाण्ड रूपी धर्म का (पूजा-पाठ, जप-तप, तीर्थयात्रा-स्नान, देवदर्शन आदि, रूप इतना अधिक विस्तृत, उलझनभरा (पेचीदा) खर्चीला और झंझट, पूर्ण है, कि सारे का कोई भी पालन नहीं कर सकता। अत: साधु की परिभाषा के अनुसार -

साधु ऐसा चाहिए, जैसे सूप सोभाय।
सार-सार गहि लेत है, थोथा देय उड़ाय।।

अत: सरलता से यह कहा जा सकता है, कि आवश्यक ही व्यवहार्य और अनुकरणीय हो सकता है। किसी की अनिवार्यता की पहचान यही है, कि उस के बिना जीवन की गाड़ी न चल सके, कार्य पूर्ण न हो सके। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि दयानन्द ने यज्ञ प्रक्रिया के सम्बन्ध में लिखा है, कि 'यद् यदावश्यकं युक्तसिद्ध ततज् कर्त्तव्यझ, नेतरत्' वेदविषयविचार पृष्ठ-60

इसी रहस्य को समझते हुए ही छान्दोग्य (5,1,6-15) और बृहदारण्यक (6,1,7-14) उपनिषद में एक आख्यायिका आई है, कि-

इस बार सारी इन्द्रियों में विवाद छिड़ गया, कि कौन सब से श्रेष्ठ, ज्येष्ठ इन्द्रिय है ? हर इन्द्रिय अपना-अपना राग अलापने लगी कि मैं ही सब से श्रेष्ठ हूं। जब आपस में वे किसी निर्णय पर न पहुंच सकीं, तो वे प्रजापति के पास पहुंची और प्रार्थना की, कि आप ही निर्णय कीजिए, हम में से कौन सी इन्द्रिय सब से श्रेष्ठ है ? प्रजापति ने उन की बात सुनने के बाद कहा, कि तुम सारी क्रमश: एक-एक वर्ष के लिए शरीर को छोड़ कर चली जाओ। जिस ने जाने पर शरीर जीवित न रहे, वस्तुत: वही इन्द्रिय सब से श्रेष्ठ है, यह स्वत: सिद्ध हो जाएगा। यह कसौटी सभी इन्द्रियों को पसन्द आई और अपनी-अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगीं।

सब से पहले वाणी गई और उस ने एक साल बाद लौट कर देखा, कि उस के बिना भी गूंगों की तरह शरीर जीवित है। अत: वह शर्मसार हो कर अपनी जगह चुपचाप दुलबक गई। इस के बाद आंख चली गई, जब उस ने एक वर्ष के पश्चात् आकर देखा, 'आंख है तो जहान है' वाली उक्ति कहीं चरितार्थ ही नहीं हुई। तो वह लज्जित होकर रह गई, कि अन्धों की तरह शरीर की अन्य सारी व्यवस्था चल रही है। फिर कान गए, उन्होंने आकर देखा, बहरों की तरह शरीर चल रहा है। अत: शर्मिन्दे हो कर के चुपचाप बैठ गए। इस प्रकार सब से अन्त में प्राणों की बारी आई, पर जब प्राण चलने की तैयारी ही करने लगे, तो उन के साथ ही सारी इन्द्रियों के पैर उखड़ गए। अपने पैरों के नीचे से धरती सरकती देखकर एकदम सारी इन्द्रियां हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगीं, कि महाराज! आप न जाइए। आप के तो जाने की तैयारी करते ही हमारी जान निकलने लगी। आप ही हम सब में से सब से श्रेष्ठ हैं, आप के कारण ही हमारी सत्ता है, हमारे बिना शरीर को कुछ कष्ट तो होता है, पर किसी रूप में भी गाड़ी नहीं रुकती। अत: हर तरह से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ आप ही हैं।

इस आख्यायिका का यहां यही अभिप्राय है, कि अन्य इन्द्रियां की तरह जितने अंश में जो भी उपयोगी है। वही-वही वस्तुत: सरल-सुखी जीवन के लिए उतना ही अनिवार्य तथा उतने ही अंश में उपयोगी कहा जा सकता है। इस सारे प्रसंग को एक दूसरे ढंग से इस प्रकार भी कहा जा सकता है, क्योंकि संसार में अनेक प्रकार के व्यक्ति हैं। कुछ पर्याप्त पढ़े-लिखे हैं, तो मानव समाज का एक बहुत बड़ा भाग बहुत कम पढ़ा-लिखा है या अनपढ़ की श्रेणी में आता है। कुछ इन के बीच की श्रेणी में आते हैं। इन तीनों वर्गों को सामने रख कर धर्म के स्वरूप पर जब हम विचार करते हैं, तो धर्म और उस के तत्त्वों का स्वरूप सरल रूप से इस प्रकार कह सकते हैं।

कई बार एक स्वाध्यायशील या अनुभवी बहुत कुछ पढ़ने और अनुभव के बाद स्वाभाविक ढंग से कह उठता है, कि यह सत्य है, कि संसार में एक से बढ़ कर एक शास्त्र है, पर इस सारे का सारांश तो इतना ही है। शेष तो अलग-अलग ढंग से बात को समझने का प्रयास है। इसी बात को उपनिषद के ऋषि ने इस प्रकार से कहा है- सारांश को समझ कर उस के अनुसार चलने का प्रयास करना चाहिए, अधिक कथा, वार्ता में व्यस्त नहीं रहना चाहिए। शास्त्रों, कीर्तनों, जपों, पाठों के अधिक चक्रों में रहना, एक प्रकार से वाणी का ही व्यायाममात्र ही है।

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मण:।
नानुध्यायाद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तदिति।। बृह.उप. 4,4,21

अत: जीवन में सारों का सार यही है, कि मनुस्मृति (6,92) में बताई गई धृति, क्षमा आदि दस बातों का यथाशक्ति पालन करें।

होशियारपुर
मो. 09464064398

दूसरी विवशता आर्थिक परिस्थितियों के कारण कारोबार को इतना अधिक समय देना पड़ता है, कि तब अपने धर्मग्रन्थ को पढ़ने या उस की सभी बातों के पालन के लिए पूर्ण समय नहीं मिलता। यह ठीक है, कि अधिकतर रुचि, श्रद्धा, लगाव की कमी के कारण अन्य व्यस्तताओं का बहाना भी लेते हैं। पुनरपि सामयिक परिस्थितियों और व्यस्तताओं को सामने रख कर उदार और व्यावहारिक बुद्धि या दृष्टिकोण से यही कहना चाहिए, कि किसी धर्म के विस्तार की कोई सीमा नहीं है, पर हंसों की तरह सार को

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 30-31 \12 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

डी.ए.वी. इंटरनैशनल, अमृतसर में शिक्षा मंत्री डॉ. दलजीत सिंह ने विद्यार्थियों को किया सम्मानित

डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल, अमृतसर में वार्षिक पुरस्कार वितरण समारोह के अवसर पर भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया। पंजाब सरकार के शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. दलजीत सिंह चीमा इस अवसर पर मुख्य अतिथि थे।

समारोह का शुभारंभ ज्ञान के प्रकाश के प्रतीक दीप प्रज्ज्वलन से हुआ। प्रिंसीपल अंजना गुप्ता ने अतिथिगणों का स्वागत किया। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में बताया कि वर्ष 2015 में विद्यालय की उपलब्धियों में विलक्षण प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए छात्र–छात्राये राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त कर रहे है। उन्होंने कहा कि शिक्षक वर्ग के उचित मार्गदर्शन एवं विद्यार्थियों के अथक परिश्रम से विद्यालय दिन–प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

मुख्य अतिथि डॉ. दलजीत सिंह चीमा ने पुरस्कार प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों बधाई दी और डी.ए.वी. संस्थाओं की सराहना करते हुए कहा कि डी.ए.वी. संस्थाएँ शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। उन्होंने कहा कि शिक्षा का प्रथम लक्ष्य युवा वर्ग को अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य बनाना होना चाहिए। आज के तकनीकी युग के विद्यालयों में प्रारम्भ से ही विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए कि शैक्षणिक अवस्था पार करते ही वे उचित नौकरी प्राप्त कर सके या स्व–रोजगार प्रारम्भ कर सके। मुख्य अतिथि विद्यालय के नव–निर्मित भवन **'अतिथि गृह'** का उद्‌घाटन किया एवं विद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'प्रथा' का विमोचन भी किया। उन्होंने विद्यालय की उपलब्धियों को देखते हुए प्रोत्साहन स्वरूप दो लाख रूपए की धनराशी देने की घोषणा की। शिक्षा खेलों एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले 142 विद्यार्थियों को स्वर्गीय डॉ. उर्मिला लखनपाल छात्रवृत्ति और शिक्षा में अच्छा प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को स्वर्गीय डॉ. उर्मिला लखनपाल छात्रवृत्ति और शिक्षा अच्छा प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों को स्वर्गीय डॉ. समीन सिंह छात्रवृत्ति के अन्तर्गत नगद पुरस्कार, स्मृति चिह्न एवं पुस्तकें दी गई।

डॉ.वी.पी. लखनपाल ने पुरस्कृत विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों को बधाई दी और कहा कि प्रत्येक माता–पिता की अपने बच्चों से अनेक अपेक्षाएं होती हैं। ये अपेक्षाएं तभी पूरी होती है जब बच्चों का उचित मार्ग दर्शन एवं अवसर प्राप्त हो।

विद्यालय के प्रबन्धक डॉ. राजेश कुमार ने भी पुरस्कार प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को बधाई दी और भविष्य में भी दृढ़ निश्चय के साथ अथक परिश्रम करते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

इस अवसर पर डी.ए.वी. इंटरनैशनल के विद्यार्थियों द्वारा रंगा–रंग सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया।

एल आर.एस. डी.ए.वी. अबोहर में हुई संगोष्ठी

अबोहर सतत् व विस्तृत मूल्यांकन प्रणाली को अत्यंत प्रभावी बनाने के उद्देश्य से एक दिवसीय संगोष्ठी व कार्यशाला का आयोजन एल आर एस डी.ए.वी. सी.सै. मॉडल स्कूल में किया गया। इस अवसर पर बठिंडा प्रक्षेत्र के स्कूलों के अंग्रेज़ी विषय के लगभग 24 अध्यापक अध्यापिकाओं ने भाग लिया। संगोष्ठी से पूर्व सभी प्रतिभागियों द्वारा दैनिक हवन यज्ञ में भाग लिया गया इस अवसर पर प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुगर मुख्य यजमान थीं। डी.ए.वी गान तथा दीप प्रज्ज्वलित कर संगोष्ठी का शुभारंभ किया गया। आए हुए सभी प्रतिभागियों का प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुंगर द्वारा स्वागत किया गया।

साथी अध्यापक–अध्यापकों को 21वीं शताब्दी में शिक्षण विधि की चुनौतियों व सतत् व विस्तृत मूल्यांकन के विभिन्न पहलुओं पर खरा उतरने हेतु पारंगत करने में श्रीमती बिन्दु चावला व श्रीमती राखी पुरी मुख्य रिसोर्स पर्सन थी। दोनों द्वारा हॉल ही में डीएवी कॉलेज मैनेजिंग कमेटी नई दिल्ली, में आयोजित मास्टर्ज ट्रेनर वर्कशाप में भाग लेने के बाद प्राप्त अनुभवों को उपस्थिति के साथ सांझा किया गया।

संगोष्ठी व कार्यशाला के प्रातःकालीन सत्र में श्रीमती बिन्दु चावला द्वारा अंग्रेजी कविता शिक्षण के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई व विद्यार्थियों के कक्षा स्तर के अनुसार कविता पर आधारित प्रश्नों को तैयार किया गया।

श्रीमती राखी पुरी द्वारा विद्यार्थियों में पठन व पाठन की रुचि को बढ़ाने, कक्षागत स्तर पर पाठन करने के ढंग, नोटिस, कहानी रचना संबंधी विभिन्न बिन्दुओं को सांझा किया गया। अपराहन सत्र में अंग्रेजी भाषा के व्याकरण, व प्रतिभागयों की शंकाओं से भरे प्रश्नों पर विस्तृत चर्चा कर मास्टर्ज ट्रेनर्ज द्वारा हल निकाले गए। प्रतिभागियों द्वारा पाठ योजना पर भी चर्चा की गई शान्ति पाठ से

डी.ए.वी. खेड़ा खुर्द के छात्रों ने पाया गुरुकुलीय जीवन का अनुभव

डी.ए.वी. खेड़ा खुर्द के आर्य समाज युवा क्लब के छात्रों ने अपना समय खेड़ा खुर्द स्थित छात्र गुरुकुल में बिताया। वे गुरुकुल तक पैदल गए व आर्य समाज के दिव्य नारों को बोलते हुए गुरुकुल में प्रवेश किया।

छात्रों को गुरुकुल की कार्य प्रणाली से अवगत कराया गया व नैतिक मूल्यों पर आधारित दिव्य उपदेश दिया गया। विद्यार्थियों ने गुरुकुल में श्रमदान भी किया। दोपहर 12 बजे गुरुकुल के विद्यार्थियों के साथ भोजन करके विद्यालय आए।

आर्य युवा क्लब के अध्यापक श्री धर्मेन्द्र आचार्य, श्रीमती मोनी शर्मा व मुकेश शाण्डिल्य शास्त्री ने छात्रों का मार्गदर्शन किया। प्रधानाचार्या श्रीमती देविका दत ने बच्चों से जाना की उन्हें गुरुकुल का नित्यकार्य कैसा लगा। बच्चों का उत्साह सराहनीय था। बच्चों ने इस प्रकार कि गतिविधियों को ज़्यादा से ज़्यादा शिक्षा के साथ जोड़ने का सुझाव दिया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**